

अष्टम की ओर

प्राचार्य श्री तुलसी धवस समारोह के अभिमन्दन में

अणुव्रत की ओर

प्रथम भाग

सारणीय विद्या मन्दिर

बीकानेर

भूमिष्ठ

मुनि श्री मगराजजी

सम्पादक

मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

प्रथम सम्पादक

श्री सोहनसाल बाफरणा

जयधर्म श्री अनुव्रत समिति बिस्फी

१९६१

जात्माराम एण्ड संस

दिस्ती, ० जयपुर, ० जालन्धर, ० मेरठ

ANUVRAT KI OR

by

Muni Shri Mahendrakumarji Pratham

Rs 2/00

(जो जैन इवेताम्बर ठेठपंथी महासभा क्रमकथा के सौम्य से प्राप्त)

प्रकाशक

चमत्मान पुरी संचालक

आरमाराम एण्ड सस

काश्मीरी गेट दिल्ली

मार्क हीरो गेट जामशेर

चौड़ा चण्डा जयपुर

बेबनपुल रोड मेरठ

प्राचरण

योगेन्द्रकुमार बल्गा

दुरय

भाग २ ००

प्रथम संस्करण

१९११

मुद्रक

डी सीङ्गल इन्डिस्ट्रिक प्रेस

दिल्ली ६

भूमिका

साब स लवभम बाईं ह्वार बप पूब भगवान् थी महावीर न नान्तवप क पूर्वी अक्षस स पांच अगुवर्तों का मन्दप दिया बा । गौतम बुद्ध ने मगभग उनी युग में घोर उषी अक्षस में पंचमीस का मन्दप दिया बा । ब सम्भप पूब म अक्षर भारतवर्ष की पश्चिमी सीमाओं म ही मही टकराए अगिनु, कालान्तर म बे समुद्रों पार भी पहुँच गए । अगुवर्त-आन्दोलन का बोध भारतवर्ष के पश्चिमी अक्षम राजस्थान में महति मूखन्य आचार्य थी तुलसी के मुख में उठा घोर गेय की मुबिस्तुत सीमाओं तक पहुँचा । पूब के सोचों म माना महावीर घोर बुद्ध का बही सम्भेध पश्चिम म प्रतिष्ठातित होकर पुन ह्वारे कानों में पडा है जो उत्तर घोर अक्षस के सोचों न माना भारतवर्ष एमे पुर्णों को मया मे हा पैसा करता रहा है जो बिगठी हुई ममाज की बुरी को चारख करक रसत है ।

आन्दोलन के साब सबका अन्तख जुड़ा । उसकी अर्था म्प्राप्तियों म अनी घोर लोक्षमा तथा बिज्ञान समाओं में अनी । अने जनता का सहयोग मिसा घोर जननेताओं का भी । बेध के आनीगु हम घोर सक्रिय हुए हो दग के बिचारक घोर साहित्यकार भी । आन्दोलन की अन्तिम परीसा बुद्धिजीवी सोचों म हुई घोर बहु बही कर उतरा । 'अगुवर्त की घोर' आन्दोलन का बाध प्रतिबिम्ब मही बहु उदके अन्तर का प्रतिबिम्ब है । बहु ऐमे बेसकों की अक्षिनी मे आबिभूत हुआ है जिनकी अनी दृष्टि स्त्रुन को बेबकर अन्तर का पहगु करने में ममर्ष है ।

अगुवर्त-आन्दोलन एक बिचार अक्षि है । बहु प्रत्यक निमागु का प्राक्बिम्ब बिचारों में देखता है । बिमल १२ बपों में अगुवर्त-आन्दोलन ने जन में क्या क्रिया बहु किसी भौतिक अनेकर के रूप में मही बैसा जा सकता घोर न बहु सोल-माप संख्या का बिधय ही बन सकता है । बहु अमूर्त निमागु है जो कोटि-काटि-नामों के मन मे प्रमूत हुआ है । बहु बिचार-निमागु अर्थात् अक्ष में

परिणत हुआ भी दृष्टिगोचर हा रहा है । नैतिकता शब्द प्रसाधन में था रहा है जिसका कैम्बो में था रहा है योजना धार्योम में था रहा है तथा बहु मरों धीर बाजारो धीर रचनात्मक सरसाधों में था रहा है । नैतिकता शब्द को धार्ये साने में अणुवृत्त-धाम्दोसन देग में अपना निरूपय स्थान रखता है । ऐसे अधिवान की हैम में अधिवाय्य अपेक्षा की जो कैम्ब नैतिक अम्पुवय को ही अपना ध्येय बनाकर धार्ये बन । अणुवृत्त-धाम्दोसन न इस अपेक्षा को पर्याप्त रूप से पूरा किया है ।

मुनि महेन्द्रकुमारजी प्रथम में प्रकीण विचार मुक्तियों की एक सूत्र में विरोधर एक बहुमुख्य हार बना दिया है । विचार एक स्थायी सम्पत्ति होते हैं । उन्हें संजोकर निभी सुरक्षित मजूपा में रक्त दिया जाता है तो वे कुप-कुप के लिए प्रेरणा दीप हो जात है । मुनि महेन्द्रकुमारजी ने अणुवृत्त-धाम्दोसन के प्रचार प्रसार में बहुत सारे मौलिक कार्य किये हैं । साहित्य के क्षेत्र में भी धाम्दोसन को मान्यता दिधान में उनकी मूळ बुझ धीर उनका श्रम अपूर्व है । एक मुन का जब साहित्यकारों को धाम्दोसन में साम्प्रदायिक रण्य धाती की ठेव धीर प्रभाव नहीं मयता था । मुनि महेन्द्रकुमारजी ने आन्धि की इस कुर्मो धीरार को हटान के लिए साहित्यकारों परकारों तथा धाम्य विचारकों में ध्यक्तिध-धाम्य माया । धनरुपा मुक्तिस्तुत जर्नीए की । उनकी धार्येधामों का बुद्धिगम्य समाधान दिया धीर उन्हें धाम्दोसन के प्रति प्रभावित किया । शिम्पी जयपुर, बम्बई ससनरु धीर बसन्ता उनके धार्येधर रहे । धार्ये धार्ये में धम्हूनि धूप, धाया धीर धूरी की जरा भी परबाह न की । दरबाजे में दरबाज पर धूमकर जन-गम्यत का जो उग्रान भाई धयताया बहु सर्वथा नवीन धीर उनके धार्ये माह्य का परिधायक का । धारर धीर तिरस्कार का सम रूप में समझ सकने धामा ध्यक्तिध इसमें सकन हो सकता है । उनकी योग्यता धीर तथा धार्ये-निष्ठा को धेधर धनरों धीर बुझ हाने थे । एक बार वे धूमन-धिरने धुप्रगिध विचारक धीर साहित्यकार की जैनेन्द्रकुमारजी के धर पहुँच । जैनेन्द्रकुमारजी ने पूछा—धार धार किनन साहित्यकारों में धय तक धम्हूनि नर धुने हैं । मुनि महेन्द्रकुमारजी न ध्यिन धार न उनर धिया—धारका नम्बर नाठकी है ।

जैनेन्द्रकुमारजी ने कहा—आपकी कार्यक्षमता के प्रति भरे मन में ईर्ष्या होती है। कास ! मैं भी ऐसा कर्मभ्य होता। एस ही एक प्रसंग पर काका कामेलकर ने कहा—आप मेरे घर पर आए इसम जन सामुहों के प्रति मेरी भद्रा बढ़ी। मेरा घब तक का अनुभव यही था कि जैन साधु सबको धरने यही ही बुलाकर जुम होते हैं। असलु, उनके व्यक्तिगत सम्पर्क के कट्ट और मधुर संस्मरणों का एक लम्बा खीरा है और किसी दिन वह अणुवत इतिहास का एक प्रकरणप्रद अध्याय बनया। तदनन्तर मुनि मोहनभाषजी 'दार्वुस' आदि और भी धनेकों मुनियों से इस लोक में कार्य किया और कर रहे हैं। इस कार्य वीली का परिणाम हुआ कि अणुवत-आन्वोसन बहुत शीघ्र ही वेद के बुद्धिजीवी लोगों की मेखिनी और वाणी का विषय बना।

पिछले वर्षों मुनि महेश्वरकुमारजी प्रबन्ध 'हस्तलिखित 'अप ज्योति' पत्रिका का असात्मक इग स सम्पादन करते रहे हैं। उन्होंने जो अणुवत विद्यापाठ भी लिखासे। 'अणुवत की घोर' में अतिकीस सेख न ही हैं जो उक्त विद्यापाठों से लिए गए हैं तथा कुछ अर्थ भी। कुछ मिलाकर ३३ निबन्धों का यह संकसन अणुवत साहित्य में थीवर्धक और जन-मानस के गिग एक नैतिक पाथेय होया ऐसी आशा है।

२८ जून ११ }
दिल्ली

—मुनि नगराज

सम्पादकीय

साहित्य मनुष्य की निरूपण सम्पत्ति है। साहित्य ही मृत को बतमा स और बतमान को मरिष्य से जोड़ता है। सहस्रों वर्ष पूर्व मनुष्य ने जो मोक्ष प्राप्त के मनुष्य को विरासत के रूप में मिसता है और प्राप्त मनुष्य जो मायता है वह साहित्य के माध्यम से जाने वाली पीढ़ी को विरासत बनता है। एक युग वह भी था जब मनुष्य लिखने का धारो नहीं था। तब मुक्तस्य परम्परा म ही अपना ज्ञान सबसे पीढ़ी को देता था। साहित्य की यह कार्य मात्रा क्यों म हर एक युग में बढ़ती ही रही है और मनुष्य इससे उपकृत होता ही रहा है।

अनुपम-आत्मोन्नत एक नैतिक-प्रवाह है। रक्त का संचार जैसे हर एक बमनि में धावक होता है नैतिकता का संचार भी जीवन के हर व्यक्तमय और युग के हर चरण में अपेक्षित है। साहित्य ही उस नैतिक विद्युत् का वाहक तत्व है। 'अनुपम की धोर' से लोगों को नैतिक प्रेरणाएं ही नहीं मिलेंगी वह एक युव की स्थिति का शरीर भी युग-युग में देता रहेगा। चिन्तन और मनन की दृष्टि से भी उससे पाठकों को बहुत सामाजी उपलब्ध होगी।

अनुपम साहित्य अब तक पर्याप्त समूह ही जुटा है। इनको विवेचनात्मक पुस्तकों प्रकाश में था चुकी है, पर वह संकलन अपने प्रकार का है। एक ही दृष्टि में देश के अनेकानेक विचारकों के विचार इसकी अपनी विधेयता है। अनुपमों पर अब तक लेख रूप में चिन्ता लिखा गया है वह समग्र इस संकलन में नहीं था सका है। विद्वान् मुनिजनों ने लेख रूप में चिन्ता लिखा है उनका स्वतन्त्र संकलन कई जगहों में जाने योग्य है। इतर विद्वानों ने भी अब तक लिखा है उसमें से भी प्रस्तुत संकलन में जुने हुए लेख ही लिए जा सके हैं। कुछ एक बक्तारों क भाषणों को भी संशुद्ध कर लेकों का रूप दे दिया गया है ताकि सर्वसाधारण के लिए उनके अनुपम सम्बन्धी विचार सश सुलभ रह सकें।

'अनुपम की धोर' के लेख केवल समावा-बुद्धि से ही नहीं मिले गए हैं

उनमें तत्त्वस्यर्ची चिन्तन भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसा लगता है साधारण की तुलना का वह धार्य उपरोक्त धर्म एक समाज-वर्धन का रूप ले रहा है। हर एक वर्धन की उद्गम भाषा भी तो यही है कि पहले वह धार्य उपरोक्तों के रूप में मोरुप्राही बना और तत्त्वस्वभाव तर्कजीवी मनीषियों के चिन्तन का विषय होकर वर्धन बना। बहुत सारे लेख विचार सामग्री की दृष्टि से भी समूचे हैं। शिक्षाजी मरहुरि भावे ध्युपठ-आन्वोलन के पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए अपना प्रतिमत्त व्यक्त करते हैं—जीवन सुखि के धार्य में मुखरत हो बापाएँ हमारे सामने घाती हैं—विचारों की अनुशारता—सकाशजीमता और प्रचार की प्रवसता या आत्मणशीलता। ये दोनों परम्पराएँ सदा से जनी आ रही हैं जो जीवन-व्यव की प्रवसत नहीं बनने देती।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने एक ऐसा विचार रखा कि जो सद्बिचार हमारे हृदय में संकुरित हुए हैं वे हमारे आचरण में धार्य किन्तु हमने तसका विपरीत धर्म यह मयाया कि जो सद्बिचार हमें मिले हैं वे दूसरे को नहीं देने चाहिए। एक व्यापाम विद्या न बारंगत व्यक्त अपनी विद्या दूसरे को नहीं बतलानेया चाहें उसके प्रवसतन के साथ उसकी विद्या भी क्यों न समाप्त हो जाए। इस तरह हमारे समाज में ज्ञान और विद्या का संकोच हाता गया। इही तरह पाति धामित ऊँच-नीच की शिव धारना भी विचार अनुशारता को बल पहुंचाती रही। धम्पुस्यता का भाव भी रूप पातक नहीं रहा। इस तरह विचारों की संकोच शीमता के कारखु जीवन-सुखि का धार्य धरवट्ट होता गया।

दूसरा विचार पात्रचार्य धार्यनिकों ने हमारे सामने यह रखा कि हमने जी सद्बिचार धारंग विद्या हैं उनका धधिकामिक विम्लार करना चाहिए। किन्तु जीवन में उन्हें धारंगित करक ही प्रसारित करना चाहिए यह धारंग उन्हींने नहीं रखा। भारतीय-व्यवन का जीवन-सुख जहां धारंग प्रवसत धर्म रहा वहां पात्रचार्य धार्यनिक इन जीवन-सुख को सामने रगकर न बने। इनले हृदया यह कि विचार उमार का बल मिला किन्तु धारंग तस कमजोर और गौण बनना गया। इस तरह बहू विद्याधर्मों के प्रचार की उबरदस्ती भी रही। एक ह्राय में धारंग

घोर दूसरे हाथ में मृत्यु की जहाँ स्थिति बनी बर्ग विचार-प्रसार या प्राबल ही प्रमुख था ।

असुख-आन्दोलन के बारे में जब मैं साक्ष्यता हूँ तो य दोनों बाधाएँ वहाँ गजर नहीं पाती हैं । साम्प्रदायिक भाषण वहाँ नहीं है इसलिए विचार-अनुसारता को स्थान नहीं मिलता । सबविचारों को जीवन में उतारने का और भावना-प्रसार हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त प्रपनाया जाता है । इससे उसमें आचार-अभाव और आक्रमणशीलता का भाव पनप नहीं पाता । ये दोनों आन्दोलन के सर्वोपरि स्पष्ट पक्ष हैं जो इसके विकास का मंगल संकेत करते हैं ।

प्रसिद्ध विचारक श्री जैनेन्द्रकुमार अणुप्रत-आन्दोलन की उर्जस्विता व्यक्त करते हुए लिखते हैं—अणुप्रत यानी व्रत का आरम्भ । यह कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसे अव्यवहारी कहकर टास दिया जाए । सारा व्यवहार इसके मातृक सद्गता है । बल्कि देखें कि व्यवहार उससे पुष्ट बनता है । जीवन मन्द नहीं होता प्रत्युत व्यवस्थित होता है । अन्तर-विषेण बहु अनुपम नहीं है जो हमारी जीवन वेतना को धत-विभ्रत करता हो । वह तो उल्टे अतन्म को स्वस्म करता है । वह कभी प्राण वेग को कुष्ठित करने वाला नहीं बनता है बल्कि वह उसे उर्जस्व करता है ।

राष्ट्रपति डा राजेन्द्रप्रसाद आन्दोलन के आरम्भ से ही उसके प्रत्येक कार्य क्रम में गहरी अभिबन्धि लेते रहे हैं । उन्होंने आन्दोलन को व्यक्तिगत जीवन से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार तक आबन्धक व भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित माना है । वे एक स्थान पर लिखते हैं—यही कारण है कि विचारशील भोग अब जीवन के आध्यात्मिक पक्ष पर विचार करने का प्राबल कर रहे हैं । जिससे वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ मानव आध्यात्मिक तत्त्वों को भी अपने दैनिक जीवन में और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में ग्रहण करने का प्रयत्न करे । इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अणुप्रत-आन्दोलन इस विधा में कई वर्षों से प्रसंसनीय कार्य कर रहा है । इसके लिए आन्दोलन के नेता आचार्य श्री तुमसी तथा दूसरे सदस्यवर्ग बर्बाद के पात्र हैं । अणुप्रत-आन्दोलन जनबान् महावीर और अन्य तीन मुनियों तथा भारतीय संतों के आदर्शों से अनुप्राणित हुआ है । इसलिए आन्दोलन के प्रया

तथा उसके आदर्श भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से सर्वथा अनुभूत हैं और उस समयसे प्रथम उसके पासन करने में हमारे लिए अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

जननेता श्री जयप्रकाशनारायण की मान्यता है कि भूदान और धरणीदान आन्दोलन की प्रकृतियाँ ऐसी हैं जो हृदय-परिवर्तन द्वारा अहिंसक समाज की नव रचना में अग्रसर हो रही हैं जिसे काम्य करने के लिए हम धारि देना प्रायः असम्भव ही दीख पड़ते हैं।

श्री जयप्रकाशनारायण का यह मुद्दा अतिमत्त है कि हमारे आदर्श की धरणीदान के लिए आचार्य तुमसी न बहुत मुश्किल कार्यक्रम रहा है। योजना आयोग के सदस्य श्रीमन्नारायण आन्दोलन की गतिविधियों में बहुत रस लेते रहे हैं। वे इस आन्दोलन से बहुत आभावादी हैं और समाजवादी समाज-व्यवस्था की रचना में इसे सहायक मानते हैं। वे मिलाते हैं—आर्य-विश्वास व सच्चाई के साथ नैतिक नियमों का पालन करने वाले

मुद्दी नर व्यक्ति भी सामाजिक बातावरण को प्रभावित किस बिना नहीं रह सकते। काय की मुदता के कारण प्रभाव प्रवरण हो किनेगा और जन जन का जीवन इतना प्रभावमान हो उठेगा कि विरवमर को इसकी अनुभूति हुए बिना ही परन्तु धनर देग में बोड़े भी मुद्दा धरणीदान हुए तो देग की उन्नति असम्भवावी है। धरणीदान-आन्दोलन मानव-मन्तिक की उपज नहीं है बल्कि यह ईश्वरीय देग है।

मुझ तक विश्वास है कि धरणीदान-आन्दोलन सोनों के नैतिक म्तर को उंचा उठाने में सफल होगा और ठोम नीब पर समाजवादी समाज-व्यवस्था की रचना में सहायक बन सकेगा। मैं आशा करता हूँ कि यह आन्दोलन दिन प्रतिदिन तेजी पकड़ता जायेगा।

बकिबर भी बासहृष्ण धार्मी 'नवीन' आन्दोलन को गहरी रूप से पूर्ण भारतवर्ष के इच्छाओं द्वारा उपरिष्ठ तत्त्व की अतिमत्त धरणीदान मानते हुए मिलते हैं—भूनि प्रवर आचार्य श्री गुलामी द्वारा प्राग्जन किया गया धरणीदान

आन्दोलन हमारे देश के नैतिक पुनरुज्जीवन की दिशा में एक मंगलमय एवं प्राथमिक चरण निरूपण है। भारतीय के इष्टार्थों ने सहस्रों वर्ष पूर्व मानव समाज के उत्थान का उसके नैतिक विकास का जो उत्कृष्ट बुद्धिमत्तु हृदयंगम एवं प्राथमिक चरण कर लिया था उसी सनातन उत्कृष्ट की धर्मिता भावति यह आन्दोलन है।

प्रस्तुत पुस्तक अष्टम-आन्दोलन के इतिहास उसकी बार्थनिक पृष्ठभूमि नवीन समाज-रचना में उपयोगिता का विविध पहलुओं पर प्रकाश डालती है। मेरा अनुमान था कि उपलब्ध सामग्री एक ही प्रकार में समा जायेगी पर उसकी बहुमता ने ऐसा होने नहीं दिया। इस संग्रह को दो भागों में विभक्त करना पड़ा है।

प्राथमिक भी तुलसी को पुत्र के रूप में पाकर तो मैं कृतकृत्य हूँ ही किन्तु मेरे लिए यह भी पीरवास्पद है कि मुझे मुनि भी नगराजजी का सतत मार्ग-दर्शन मिलता रहा है। मुनि भी आन्दोलन के विचार धीरे कर्तृत्व दोनों पक्षों के विकास में अहर्निश यत्नशील रहे हैं। आन्दोलन की प्रत्येक दिशा में उनका मूल्यांकन मोज रहा है। प्रस्तुत उपक्रम भी उनके मार्ग-दर्शन का ही सुपरिणाम है।

२४ अग ५१

बुद्धिचन्द्र जीत स्मृति भवन
नवाबाजार, दिल्ली

—मुनि महेश्वरकुमार 'प्रथम'

अनुक्रम

दण्डप्रत भारतीय संस्कृति का प्रतीक	—पद्मपति डा० राजेश्वरप्रसाद	१
ब्रह्मचर्य और अनुष्ठान	—श्री अमरकांतनाथराय	४
एक चिराग ! एक ज्योति !	श्री उ० न० देवर	६
अनुष्ठान एक ईश्वरीय वेद	तात्कालीन काठमाण्ड्य	
	—श्री० श्रीमन्नारायण	१२
	महम्मद मोहना भायोग	
साम्योक्त के अर्थ बहुत	—श्री शिवाजी मन्हरि भावे	१२
संबन्धितकारी अनुष्ठान-आन्दोलन		
	—डा० विश्वेश्वरप्रसाद एम० ए० बी० लिट्	१८
	सम्प्रदाय इतिहास विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय	
बाती से बाती जले	—श्री अश्वमेधकुमार	२१
अनुष्ठान भाव-अर्थान्तर का प्रतीक	—श्री हरिदास शिबेरो	२२
	सम्प्रदाय नवभारत टाइम्स, बम्बई	
शासन-व्यवस्था और अनुष्ठान	—श्री रामसेवक श्रीवास्तव	२७
	न० सम्प्रदाय नवभारत टाइम्स बम्बई	
मानव जीवन की कार्यकलाप का एक प्रयोग प्रकाश		
	—श्री श्री प्रेमगुठीजी	३०
जीवन की रक्षा	—श्री विधीलाल नरनाथ	३३
	विद्यार्थी कव्य प्रदेष्ट	
धर्म का प्रारंभ और अनुष्ठानकार	—श्री ज्ञानचन्द्र	३६
	तात्कालीन लह सम्प्रदाय नवभारत	

प्राञ्चोलन की प्रावश्यकता	—श्री गोपीनाथ 'प्रमन'	६१
प्रथम	वन सम्पर्क समिति दिल्ली	
व्यक्त का पुरु-विकास और सामाजिक उत्थति		
	—डॉ रविशंकर शर्मा	४४
नैतिकता की और महान् कदम	—श्री माईरयाम जैन	५१
परिस्थिति का तकाबा	—श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय	५५
प्रभुवत-प्राञ्चोलन की पृष्ठभूमि	—श्री बेषमित्र	६०
प्रभुवत-प्राञ्चोलन	—कविवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	६५
प्रभुवत और सांस्कृतिक उत्थयन	—श्री जेनेन्द्रकुमार	६८
प्रभुवत और नैतिक पुनरुत्थान	—श्री बिष्णु प्रभाकर	७२
प्रभुवत-प्राञ्चोलन : एक प्रथमयन	—श्री रामगोपाल बिद्यासंकार	७६
	तत्कालीन सम्पादक नवभारत टाइम्स	
कपनी और करनी का प्रतीक—प्रभुवत-प्राञ्चोलन		
	—श्री मातावीन भवरिया	७९
	सम्पादक हिन्दी टाइम्स	
प्रभुवत और नृबान	—सुमी सुधाशनी मोहिनी	८४
एक महत्त्वपूर्ण प्राञ्चोलन	—श्री संकरसाह बर्मा	८७
	तत्कालीन सह सम्पादक हिन्दुस्तान	
सामाजिक प्रवृत्ति में वरों का महत्त्व	—श्री हरिमाऊ उपाध्याय	९०
	बिचमन्त्री राजस्थान	
प्रभुवत समाज-शुद्धि का प्राञ्चोलन	श्री शोभासाह मुष्ट	९६
	सह सम्पादक हिन्दुस्तान	
प्रभुवत प्राथम बिद्यालय का मुख्य द्वार	—श्री श्यामप्रकाश शीलित	९७
	सम्पादक समाज	
प्रभु-प्रवित का संहारक कन और प्रभुवत		
	—श्री सरयदेव बिद्यासंकार	११

ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य	—श्री यशपाल जैन	१०८
	सम्पादक जीवन साहित्य	
हमारे दो ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य-साम्बन्ध	—श्री मुद्राचन्द्र	११२
	सम्पादक ब्रह्मचर्य	
ब्रह्मचर्य-साम्बन्ध का अर्थ —श्रीमती जमिना बापुर्वे एम० ए०		१२
भारतीय संस्कृति और ब्रह्मचर्य	—श्री रामकृष्ण भारती एम ए० बी० टी०	१२४
ब्रह्मचर्य एक दृष्टि	—प्रो० श्रीमती विवेकीसिंह एम० ए०	१२६

अणुव्रत भारतीय सस्कृति का प्रतीक

—राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद

मानव-समाज की स्थिति ऐसी अंशबोस क्यों हो कि मैत्री जैसे सहज और स्वाभाविक मास पर जोर देने की जरूरत पड़े। किन्तु इस दुःखद और कट्टु सत्य से हम घास नहीं मीस सकते कि समाज और संसार की स्थिति वास्तव में ऐसी है कि समाज के विभिन्न अंगों और राष्ट्रों के बीच मैत्री का मास सगाना प्रासस्यक जान पडता है। इस बात को देखकर और भी खेद होता है कि यद्यपि कई शताब्दियों से मानव-समाज विज्ञान की उन्नति और भौतिक साधनों के विकास के कारण काफी आगे बढ़ चुका है। दुर्भाग्य से यह भौतिक प्रगति एषांगी रही क्योंकि मानव उसी गति से जीवन के प्राध्यात्मिक पक्ष की उन्नति नहीं कर पाया है। यही नहीं हम यह भी कह सकते हैं कि कुछ समय से प्राध्यात्मिक तत्त्वों की अवहेलना हुई है।

बैज्ञानिक आविष्कारों के बहुत आगे बढ़ जाने से मानव न प्रकृति के साधनों पर इतना अधिकार कर लिया है कि विभिन्न प्रकार के विनाशकारी अस्वास्व उसके हास संग बसे हैं। विन्दा का ताल्कानिक कारण यही है कि यदि राष्ट्रों में पारस्परिक मनमुटाव बना रहा और युद्ध के कारणों को दूर कर स्वायी शान्ति की स्थापना नहीं की जा सकी तो मासी युद्ध इतना भयंकर होमा कि उससे मानव-समाज का अस्तित्व और प्राधुनिक सभ्यता दोनों ही संकट में पड़ जायेंगे।

यही कारण है कि बिचारधीन सोम अरु जीवन के प्राध्यात्मिक पहलू पर बिचार करने का आग्रह कर रहे हैं जिससे बैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ मानव प्राध्यात्मिक तत्त्वों को भी अापन वैदिक जीवन में और अन्तर्राष्ट्रीय ब्यवहार में प्रहस करने का प्रयत्न करे। इसी अरुस्य की प्राप्ति के लिए अणुव्रत प्राश्लोसन

इस विषय में कई बर्षों से प्रबंधनीय कार्य कर रहा है। इसके लिए आन्दोलन के नेता आचार्य श्री तुलसी तथा दूसरे सरस्वण बर्षाई के पास हैं। अणुवत्-आन्दोलन भयवान् महावीर धीर धर्म्य जैन मुनियों तथा माण्डवीय सन्तों के पासों से अनुप्राणित हुआ है, इसलिए आन्दोलन के प्रयास तथा उसके पारसं-नालीय सांस्कृतिक परम्परा के सर्वथा अनुकूल हैं धीर उसे समझन प्रकटा इसके पालन करने में हमारे लिए अधिक कठिनाई नहीं होगी चाहिए।

यह श्रीभाम्य का विषय है कि इस विचारधारा को बहुतेरे विदेशी लोग भी स्वीकार करने लगे हैं। सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि संघार की सबसे बड़ी आवश्यकता स्वामी शान्ति की स्थापना है। यह अर्थ्य सभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी भी पण्ड का नागरिक हो धीर किसी भी धर्म का अनुयायी हो अपने मन में दूसरे के प्रति ईर्ष्या की भावना का संचार करे धीर उसके अनुधार ईतिक जीवन में आचरण करे। इस दृष्टि से देखा जाये तो यह मानना पड़ेगा कि इस महानु प्रयास में छोटे से छोटे धीर बड़े से बड़े प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग सूखवाना है। हम सब लोग मानव समाज के उत्सव हैं धीर इस समय हमें दूसरों की चिन्ता न कर अपने-अपने आचार धीर व्यवहार को उत्तम करने की धीर ध्यान देना चाहिए। इसीमें व्यक्ति धीर समष्टि दोनों का हित समिहित है।

पिछले कई बर्षों में आचार्य श्री तुलसी के कई बार दर्शन मुझे प्राप्त हुए धीर उनके उपदेश सुनने का धीर उनके साथ वातविाप का मुझे अचछर विना, उसका मेरे पर यह प्रभाव पड़ा कि अणुवत्-आन्दोलन का प्रवर्तन करके धीर उस काम को बढ़ाने के लिए अपना समय लगाकर आचार्य श्री तुलसी देश के लिए कस्यासुकारी काम कर रहे हैं। मैं तो उनके बिना न कोई व्यक्ति धीर न कोई देश उन्नति कर सकता है पर विरोधकर ऐसे समय में जब हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर अपना घर स्वयं सम्भालने लग गये हैं अपनी आवश्यकता धीर अनिवार्यता धीर भी अधिक हो जाती है इसलिए अणुवत् आन्दोलन का प्रवर्तन एक महत्त्वपूर्ण काम हुआ है धीर मैं आशा करता हूँ कि वह दिन प्रतिदिन जैसे धाम तक बढ़ता गया है उसमें भी अधिक प्रयत्न के

साम बढ़ता ही जावेगा ।

यह सन्तोष की बात है कि प्राचार्यजी कास और रेश की परिस्थिति को हमेशा सामने रखकर कार्यक्रम निर्धारित करते हैं और जो मित्त-मित्त धेखी के सोम हैं जिनकी मित्त-मित्त समस्या होती है उन सबमें पुसकर धित्त-मित्त रीति से संगठित रूप से सबाचार और चरित्त को प्रोत्साहन देने का काम किया जा रहा है । यह काम तो बर्मधुक्कों का ही हमेशा से रहा है और प्राब भी है । बितला असर बर्माचार्यों का चाहे बह किन्ती भी बर्म अयबा पंथ के क्यों नहीं हों, लौगों पर पड़ता है, उतना बूसरों का नहीं । प्राब की स्थिति में यह अत्यन्त प्राबश्यक और महत्वपूर्व काम हो रहा है, जिसकी सफलता प्रत्येक विचारशील व्यक्ति चाहता रहेगा ।

मैं यह प्राणा करता हूँ कि यह प्रयास अब व्यक्ति की सुभकामनाओं और धैत्रीपूर्ण भावनाओं से पुष्ट होकर मानव-समाज के लिए कस्याणकारी प्रभाव का रूप धारण करेगा । मैं और अधिक कहने की प्राबश्यकता नहीं समझता, क्योंकि बात बहुत सरस है और कहने-सुनने की अपेक्षा विश्वास करने और जीवन में उतारने की अधिक है ।

मैं इस आत्मोमन की सफलता की कामना करता हूँ और मेरी यह प्रार्थना है कि संसार के सभी राष्ट्र और मानव-समाज के सभी धर्म इस सद्भावना से प्रेरित हों और शान्ति स्थापना में योगदान दें ।



सहितक समाज-रचना के लिए

भूदान और अणुव्रत

—श्री जयप्रकाशनारायण

हम भारतीयों के सम्मुख बहुत-सी पारिवारिक समस्याएँ हैं लेकिन उनसे बढ़कर सामाजिक और राष्ट्रीय भी हैं। हमें संकीर्ण स्वार्थ से बाहर निकल कर समाज-हित का चिन्तन करना चाहिए। समाज के बाहर हम लोगों के जीवन का कुछ भी अस्तित्व नहीं है। बाहर जो कुछ होता है उसका असर हमारे ऊपर भी म्यूनाधिक मात्रा में पड़ता है। संकीर्ण बृत्ति को छोड़कर व्यापक बृत्ति को अपनाया हमारा प्रमुख कर्तव्य हो जाता है। अगर हम अपना दृष्टिकोण व्यापक नहीं रखते तो राष्ट्र की कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ, जो घटित हो सकती हैं हमारा अस्तित्व अक्षय्य मिटा देंगी। संकीर्ण स्वार्थ के प्रतिरोध में सत्कार के कौने-कौने में बिरोहात्मक घटनाएँ घटी हैं जिनका परिणाम बुरा ही रहा है।

अन समय था गया है कि व्यापारी वर्ग शिर्षक समाज ही अपना परम धर्म या शास्त्र न बनायें। उसे सोचना चाहिए कि व्यापार की बृद्धि के साथ-साथ समाज में मुक्त शक्ति की भी अभिवृद्धि हो। अपना स्वार्थ या लाभ के भावे समाज का हित नहीं भूलना चाहिए। व्यापार का सत्य धर्म नहीं वस्तुओं के विनिमय द्वारा शिर्षक अपने स्वार्थ और आनन्दपट्टा की पूर्ति नहीं, बल्कि सारे समाज की समुचित आनन्दकता की सम्पूर्ति होना चाहिए। मात्र व्यापार में जो धनीताता अपनाई जा रही है और यह कहना कि बिना मूठ बोले व्यापार चल ही नहीं सगठा बिना मूठ मिरापार और व्यवसाय को साम्यावहारिक दृष्टि से समुचित करार देना है। हम अपने को धार्मिक कहते हैं पर धर्माचरण से बिसम्बन्ध दूर रहते हैं। किसी भी धर्म में धर्मत्व शोषण हिंसा वर-नीडन धारि को उच्च

स्वान नहीं सभी की दृष्टि में ये सब है। जितने धार्मिक सम्प्रदाय हैं उनके पीछे एक ही भावना है—मानव एक का नहीं सबका। सम्प्रदायों की अपनी भाषाएं विचार एवं पत्र प्रबन्धमिन्न मिन्न हैं पर जनसाधारण के हित की भावना सबसे श्रेष्ठतम उपदेशित है। पर आज हम अपने इस परम उद्देश्य को भूल गये हैं और शोषण तथा संघर्ष को सब कुछ मान बैठे हैं। इसी परिस्थिति में ही विनोबा ने धर्म्यात्म के मूल सिद्धान्तों पर आधारित अपनी ध्वनि का श्रीगणेश किया है। उनकी कल्पित सत्याग्रह प्रेम और हृदय-परिवर्तन की है। स्वयं और दूसरों की कल्पितियों के समान हिंसक और रक्त-रंजित नहीं क्योंकि हृदय-परिवर्तन के बजाय शक्ति ने बल से जिये हुए परिवर्तनों के कारण कोई स्थायित्व नहीं है और असमानता परत-भता आदि भी ज्यों की त्यों मौजूद है।

आज हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि आचार्य विनोबा भावे एवं आचार्य तुमसी जैसी विषय विनूतियां हमारा पत्र प्रवर्तन कर रही हैं। दोनों महापुरुष मानवता के प्रतिष्ठापन द्वारा समता सहिष्णुता स्थापित करना चाहते हैं तथा शोषण का अन्त चाहते हैं। सुवान धीर प्रबुद्धत-धार्मिकता की प्रवृत्तियां ऐसी हैं जो हृदय-परिवर्तन द्वारा अहिंसक समाज की नव रचना में अग्रसर हो रही हैं; जिसे काम्य करने के लिए इस आदि वेद्य प्रायः अक्षय ही शीघ्र पड़ते हैं। अपने वेद्य की निर्भरता देखने से पता चलता है कि कितना असीम कुछ समाज में व्याप्त है। निर्भरों के साथ कितना धन्याय हो रहा है। इन्हीं धन्यायों एवं शोषणों के कारण ही शोषित वर्ग के कुछ नबोधित नेता रक्त-रंजित कल्पित की बुद्धि बचाने तथा शोषकों को अन-निहीन एवं उनकी प्रवृत्तियां समूह नष्ट कर देने के लिए लोगों को आह्वान कर रहे हैं।

प्रबुद्धत धार्मिकता भी सर्वोच्च धार्मिकता का एक सहयोगी ही है। इससे भी देश-विदेश के प्रायः सभी विचारक और नेता परिचित हो ही गये हैं। हमारे आदर्श की ओर बढ़ने के लिए आचार्य तुमसी ने बहुत सुन्दर क्रम रखा है। विनोबाजी और तुमसीजी सभी आदि और बर्ष के लिए हैं, दोनों सबका भसा चाहते हैं। आचार्य तुमसीजी से बम्बई में वार्तालाप करने पर उनके उच्च उद्देश्यों की अक्षय मिली। उनका कहना है कि अब सारी हिंसक शक्तियां

चाहिए कि उक्त देशों के समान बुद्धिमानों से बचाने तथा समाज में उचित पुनर्जागरण देने के लिए उचित माता में त्याग और निस्वार्थ भावना को जीवन में उतारें। महात्माजी ने भी व्यक्ति को केन्द्र मानकर उसके सुधार पर जोर दिया है और राजतन्त्र के स्थान पर लोकतन्त्र को स्थापित करने की अपनी तक सूझ ही है।

राजनीति और कानून की जर्मा शिक्षण हुआ करती है। प्राचार्य भी तुमसी तो राजनीति और कानून की जूसे छात्रों में आलोचना करते हैं। वे कहते हैं कि क्या कानून किसी स्वार्थी को निस्वार्थी या पर-स्वार्थी बना सकता है? कानून तो एक दिव्यमान है। इसलिए राजनीति और कानून के परे प्राचार्य बिनोबा और प्राचार्य तुमसी के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। जिस अन्ति से हृदय और विचारों में परिवर्तन नहीं आया वह अन्ति नहीं। हिंसा पर आधारित अन्ति से हृदय-परिवर्तन भी सम्भव नहीं। उसके लिए तो प्रेम और सहानुभूति का सहारा लेना ही है।

अन्ति कोई नहीं। जब-जब समाज में विधिसाधारण हुआ तब-तब अन्तारों एवं महापुरुषों द्वारा विचारों में अन्ति लाई गई। धर्म और नीति में से धर्म और धनीति को निकाल फेंका गया। समाज का सुधार किया गया। धर्म और नीति समाज के अनुकूल बनाई गई। समाज में एक नया विपर्यय हुआ। धार्मिक सांसारिक और सामाजिक जीवन के बीच की दीवार टोड़ी गई। महात्मा गांधी बिनोबा साहेब और प्राचार्य तुमसी भी ऐसी ही अन्त्यात्मनिष्ठ अन्ति की उन्तोपणा किए हैं। अन्त्यात्मक एवं समाज हित के लिए अन्तःकरणों का अन्त करना इन्होंने भी अन्त्यात्मक समझा। अन्त्यात् कुठ का 'धर्मिक अन्तर्गत' या धार्मिक अन्ति भी सर्वोपर्य या समाज-सुधार का विद्या-संकेत था। अन्त्यात्म अन्त्यात्मन भी नैतिक अन्ति का एक अन्ति प्रतीकित अन्तःकरण है।

ऐसे संमन्थित रूप से काम होगा चाहिए, जिससे सारी समस्याएं साध-साध हल हो जायें। सूबात-अन्त्यात्मन का कार्य सिर्फ भूमिहीनों को भूमि बांटने तक ही नहीं, पर नये समाज का रूप बनाने का नैतिक कार्य है। भूमि की समस्या तक ही हल करना इसका अन्त या अन्तिप्रान्य नहीं। जिस तरह महात्मा

धनुषत की घीर

पाँचों का १९३० का 'अमरुत धान्योत्तम' नामक एक ही सीमित नहीं रहा वह तो स्वतन्त्रता की मार्ग का एक महत्वपूर्ण धान्योत्तम था। धातुतापियों को भवाने उनके अत्याचार को धामने माने तथा परतन्त्र भारतीयों की भीड़ता को भवाने उनमें धारम-वस माने तथा स्वतन्त्रता के मार्ग पर अग्रसर होने का एक पथ था। हमारा भूदान धान्योत्तम भी वही तरह महाद है। हमारा नारा सर्वोदय का है। एकांकी नहीं बल्कि सर्वांकी है।

सम्पत्तिदान घीर धनुषत-धान्योत्तम की भी भावना एक ही है। एक समाज के हक को उभे से देने के लिए बाध्य करता है, अरिष्ठ करता है या उसे सीप देता है तथा हमारा संग्रह का ही त्याग्य बताना है घीर जो कुछ है उसे धान्योत्तम स्वरूप देने को नहीं बल्कि त्याग स्वरूप समाज के लिए छोड़ देने की भावना प्रकटित करता है। धनुषत-धान्योत्तम परिष्कृत मात्र को पाप का मूल मानता है। इसके अन्तर्गत संग्रह ही हिंसा की जड़ है। जहाँ संग्रह है वहाँ अयोग्य घीर हिंसा माने धारम मौजूद है।

एक चिराग ! एक ज्योति !

—तात्कालीन काँग्रेस सम्पन्न की ४० न० डेवर

जीवन के कई पहलू होते हैं। मनुष्य को अपने शरीर परिवार, उसकी धार्मिक स्थिति और साथ ही साथ नैतिक जीवन-विकास की साधना की फिकर करनी पड़ती है। पहले परिवार के लिए इन्सान चिन्ता करता है उसका विमान परेक्षण रखता है और धीरे धीरे समाज की फिकर करता है। यह सब इसलिये कि जिससे वह अपने निजी परिवार व समाज के जीवन को सम्भाल सके। परन्तु मनुष्य पशु नहीं उसका जीवन ज्ञाने-वीने तक ही सीमित नहीं है। उसमें पशु की प्रवृत्ति भी बाते विशेष रूप से है एक ही भात्म-स्फुरण और दूसरी विवेक-बुद्धि। इसके उपयोग से ही मनुष्य का जीवन बनता है धीरे उसे बनाता है। अणुप्रवृत्ति—भात्म-स्फुरण का सम्बन्ध ही जन-जन तक पहुँचा रहा है।

कुछ लोग सोचते हैं कि धार्मिक विकास हुआ तो सब ठीक हो जायेगा पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। दुनिया में व्यापार और मोग हैं, वे न तो परिवार को छोड़ सकते हैं और न उसके मोह को उसकी याद को ऐसी हालत में कोई ठीक मार्ग बूझने की जरूरत है। धार्मिक भी तुलसी ने कल्याण बुद्धि से हमें यह रास्ता दिखाने के लिए अणुप्रवृत्ति-भान्दोलन शुरू किया है, जो जीवन के नैतिक स्तर को ठीक करता है। जिस तरह अणुप्रवृत्ति के एक कोण के ठीक हो जाने पर बाकी के तीन कोण स्वतः ठीक हो जाते हैं उसी तरह जीवन के नैतिक पक्ष के ठीक हो जाने से उसके अग्रगण्य पहलू भी स्वतः सुधर जाते हैं।

स्वयं-वैरागी जीवन का लक्ष्य नहीं है। इससे आदमी न गिरता है न बढ़ता है। यही कारण है भारतीय संस्कृति ने स्वयं-वैरागी पर कभी धोर नहीं दिया। भारत की यह सांस्कृतिक विशेषता रही है। हमारे मस्तिष्क सबैक उन धार्मिकों के चरणों में भुके हैं, जिन्होंने मानव-जाति को धीरे से धीरे से जाने की

कोशिश की जिन्होंने रुपये-पैसे से इमारत बनाने के प्रयत्न करने से बचाव सदा नैतिक-विकास द्वारा मानव-जीवन को उन्नत करने की चिन्ता की। गांधीजी के पास क्या था ? आचार्य भी तुमसी के पास कौन से रुपये हैं ? हम उनके धाये मुकते हैं, क्यों ? क्योंकि उन्होंने उस एक नैतिक कोण को ठीक किया है जिसके द्वारा हमारे जीवन का बहुमुखी विकास होने वाला है।

हम भी सोचें इस ओर हम क्या कर सकते हैं ? पहला काम रुपये में कठिनाई लेकर महसूस होती है पर यह ठीक बीसी ही है जैसे सर्दी के मौसम में तालाब में पौं बने की विधा। मन का स्वभाव ही अधिक से अधिक कठिनाइयों से बचने का है। इन्ट्रियों का प्रभाव सदा ही घटता नहीं जाता। हमारा दिमाग बन गया है कि रुपये-पैसे के बिना काम नहीं चल सकता पर एक जिन्दा के सामने रुपये-पैसे का आकर्षण और कठिनाइयों का मय दूर हो जाता है।

मूर्ख के निकलने पर संवेद्य भाग उड़ा होता है और उसके घस्त होते ही चारों ओर आश्चर्य अपनी आदर फैला देता है परन्तु उस हास्य में भी यदि हमें कोई छोटा-सा शीपक मिल जाये तो अपना दास्ता बेग चलते हैं। आचार्य भी तुमसी ने आतुर-मानवोत्सव के रूप में हमें एक विषय दिया है एक व्योमि दी है उसे लेकर हम धार्मिक-विकास के विमोचक भावावरण में नैतिक पथ प्राप्त कर सकते हैं उसकी रीति में हम अपना काम निकाल सकते हैं। हर एक के मन में शक्ति छिपी है, उसको जागृत करके प्रत्येक व्यक्ति विकास कर सकता है।

धार्मिक-विकास की विधा-विधानों से मन को बहाने के लिए उच्छ-उच्छ की कोशिशें हो रही हैं पर धार्मिक तो मिलने वाला है। मन इमारत और नैतिक धार्मिक उदा टिकने वाले नहीं हैं। फिर वह कौन-सी चीज है, जो इन सबके जाने पर भी बनी रहती है और जो इनके जाने से पहली भी थी। वह चीज धार्मिक उदा है। उस चीज को देखें जिस पर धार्मिक चल रहा है धार्मिक उदा टिका हुआ है। उसे देखने से समझने की जरूरत को समझें।

भारतीय श्रद्धियों ने हमी धार्मिक-उदा को जोड़कर समझाया है। जहाँ तक

घरीर का प्रश्न है उसे बिलाने-पिलाने की कोशिश करना बामू पर भीत बनाने जैसा बनता है ।

भारत ने इसमें संशोधन करके बताया कि अब तक इस्लाम आत्मा की ओर नहीं देखता अब तक उसमें ब पशु में कोई अन्तर नहीं पर आज बुनिया ने इस सही तत्व को सुसा दिया है और वह भौतिक-समृद्धि की ओर भाग रही है । अब हासत यह हो गई है कि हम दिन रात राम कृष्ण बुद्ध व महावीर का बाप करते हैं, पर हमारा व्यवहार इतना नीचे जसा जा रहा है कि ये महा पुरुष हमें देखें तो क्या कहेंगे ? उनकी आँखों में आंसू के सिवा कुछ नहीं बिसाई देगा और फिर जहाँ आँखों में आंसू हों वहाँ आशीर्वाद कैसा ?

हमारे बोसने और दिनभर के आचरण में कितना अन्तर आ गया है । अय्युषत-आन्वोसन उस अन्तर को पाट देता चाहता है । अय्युषत के नरें बायिक पबिन दिन पर हम सब मिस रहे हैं । इस पुष्य अबसर पर आचार्य श्री तुससी की सिखा को हृदय से स्वीकार करें, इस स्मान को लेकर कि इसमें बहुत बड़ी ताकत मरी है । संकल्पों और प्रतों की असीम शक्ति हमें उस मंच पर ले जायेगी जहाँ न हमारा बिनास होगा और न समाज व परिवार का । अय्युषत-आन्वोसन की यह संपत्तकारी मानना बेधमर में फँसि मेरी ईत्वर से यही प्रार्थना है ।



भण्डुवत एक ईश्वरीय देव

—श्री० श्रीमन्नारायण
सबस्य योजना प्रायोग

स्वराज्य प्राप्ति के बाद देश के समस्त बर्षों का कार्य एवं व्यवहार हमारी संस्कृति के अनुकूल नहीं रहा है। किसी न किसी रूप में वहाँ बुराई पुष्ट हुई है। प्राचीन नाम से ही हमारी संस्कृति त्याग और संयम की चोतक रही है। लोगों ने सच्चे दृष्टिकोण से चिन्तन करना छोड़ भोग और विसाय के पथ पर प्रसर होना प्रारम्भ कर दिया है। मैं यह मानता हूँ जन-जन में फैली हुई इस प्रमाणाधीन भावना के परिवर्तन में भण्डुवत-भाण्डोसन का सफल प्रयास है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि आज के जमाने में बड़ी-बड़ी बातें बनाने वाले तो बहुत होते हैं परन्तु उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य बहुत हीन और छोटे होते हैं। आज भण्डुवत का युग है। संसार के बड़े-बड़े राष्ट्र व नव्यु बर्ग मानवजाति को वाग्मि और मुक्त का मार्ग प्रदर्शित करने में प्रयत्नशील है। परन्तु लोगों को सच्चे धर्मों में गुप्त या वाग्मि प्राप्त होती या नहीं यह एक सन्देहपूर्ण बात है। धार्मिक धर्म तुमहीं ने जीवन की छोटी पर महत्वपूर्ण बातों को सिद्ध धर्मों की भाषा में हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित किया है। ये बात यद्यपि सरगरी तीर पर दिगल से सुझम मासूम पड़ते हैं परन्तु इनमें व्यक्ति-व्यक्ति की भावना को बचन डालने की भारी दक्षिण छिपी हुई है। यह समझने की चीज है। सब धर्मों को जोड़कर धर्म एक भी बात की जीवन में उतार में तो बहुत कुछ हो सकता है।

हमारे देश के और विदेशों के मूलभूत सिद्धान्तों में बड़ा अन्तर है। बिना बहिःशरीरनाथ टैगोर के कल्पनानुसार हमारे देश का मजदूर दिनभर कार्य करने के बाद रात को मजदूर-जीवन करता है वहाँ एक विशिष्ट मजदूर दिनभर कार्य करने के बाद रात को रातच पीता है। ऐतिहासिक देवता है।

आज भारतवर्ष में ऐम भी सन्त पाद-विहार करते हैं जो देश के विभिन्न भागों और बर्षों में घूम-घूम कर प्रायः चिन्तन एवं त्याग की भावना प्रस्तुतित

करते हैं और जन-जन को अपने नैतिक पुनरुत्थान के लिए आह्वान करते हैं। यह हमारे लिए औरबास्यव बात है।

हमें यह निःसन्देह मानना पड़ेगा कि सोम त्यागमय जीवन को अपनाते में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। जैसा कि मैंने प्रत्यक्ष देखा जिस प्रकार सोम अपने धाम अणुवृत्ती-जीवन को स्वीकार करते हैं। हम के नेताओं ने त्याग क्रिया और उसके फलस्वरूप हमें आजाबी मिली। त्याग का फल सदा मीठा होता है यह भी हमने देखा। परन्तु स्वराज्य प्राप्ति के बाद हमारे पास त्याग का कोई कार्यक्रम नहीं रहा। मेरा क्यास है कि देश के भावी नेताओं को यदि अभी से त्याग की प्रेरणा ही जाये तो भारत का भावी चित्र कैसा होगा ? यह अभी अत्यन्त सुस्पष्ट दिखाई दे सकता है।

आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुवृत्त-आन्दोलन एक व्यक्तिकारी आन्दोलन है। नाम तो उसका अणुवृत्त है अर्थात् छोटे-छोटे लोगों को सेवा। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि छोटे-छोटे कार्यों के करन से ही अन्त में बड़े-बड़े काम सरसतापूर्वक किये जा सकते हैं। वर्तमान समाज में ऐसी कई बुराइयाँ हैं, जिनके कारण देश में दूषित वातावरण फैल गया है। जोरबजारी, रिश्वत-खोरी अमानतों में भूठी मवाही देना सब सम्बन्धियों के लिए पक्षपात करना यदि बुराइयों से भारत का अस्तित्व आज भी बचा हो गया है। इन वर्तक को मिटाने के लिए सिर्फ मापण देन सेव मिशन व प्रस्ताव पास करने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए यह जरूरी है कि जनता के बीच रचनात्मक कार्य क्रिया जाये और लोगों का चरित्र ऊँचा उठाने की कोशिश की जाये। राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने अपना रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामन इसी दृष्टि से रखा था। इन दिनों आचार्य विनोबा भावे का भूदान तथा सम्पत्ति दान आन्दोलन सामाजिक और धार्मिक दृष्टि के असावा एक बड़ा नैतिक और आध्यात्मिक आन्दोलन भी है। आचार्य श्री तुलसी के अणुवृत्त-आन्दोलन को भी मैं इसी दृष्टि से देखता हूँ। मैं इस आन्दोलन में बहुत प्रभावित रहा हूँ क्योंकि यह जीवन की छोटी-छोटी धारदारक बातों पर जोर देता है। नाकारणतय जीवन के छोटे-छोटे कार्यों के प्रति हम अपने-अपने उत्तरदायित्व को पूरा करते हैं और बड़े-बड़े कार्यों में ही बड़ी दिलचस्पी दिखाते हैं। तथ्य यह है कि जब

हम अपने जीवन की छोटी बातों की धोर ध्यान नहीं देने तक तक महानु नायों में सफल नहीं हो सकेंगे ।

धनुषत-ध्यान्वोलन में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति यह भी करते हैं । वे यह उनके दैनिक जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को छूटते हैं । साथ ही साथ वे सत्य, अहिंसा अर्थात् ब्रह्मचर्य के पालन की भी ध्यान करते हैं । इन प्रतिज्ञाओं में भूख भ्रष्टाचार, अस्पृश्यता और धार्मिक छोपण के नियम भी सम्मिलित हैं । जनता का नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए इन सामाजिक व धार्मिक कुपद्यों के प्रति हमारा ध्यान अधिक केन्द्रित होना चाहिए ।

यह हम हमारे राष्ट्र के धार्मिक जीवन के निर्माण में जुटे हुए हैं । सिद्ध है यह समझ लेना चाहिए कि नैतिक योजनाओं के बिना धार्मिक योजनाएँ प्रभावशाली नहीं बन सकतीं । मैं धनुषत-ध्यान्वोलन को नैतिक संयोजन का एक आन्तिकाटी कदम मानता हूँ । नैतिक विकास की योजनाओं के बिना हमारी धार्मिक योजनाओं का जोर सख्त जायेगा ऐसा मेरा विश्वास है ।

धनुषत जैसे ध्यान्वोलन में संस्था की अनेकानेक सुख-विकास पर ध्यान रखना आवश्यक है । मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि धनुषत-ध्यान्वोलन का दृष्टिकोण ऐसा ही है । आत्मविकास व सच्चाई के साथ नैतिक नियमों का पालन करने वाले मुदती वर व्यक्ति भी सामाजिक जाताकरण को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते । कार्य की सुदृढता के कारण प्रकाश अक्षय ही संस्था और जन-जन का जीवन इतना प्रकाशमान हो उठेगा कि विश्ववत् को इसकी अनुमति हुए बिना नहीं रहेगी । इस ध्यान्वोलन का पूरा परिचय धारण भले ही धार्मिक लोगों को न हो परन्तु धरत देश में बोड़े भी सुदृढ धनुषत ही हुए ही देश की उन्नति अक्षय-प्रभावी है । धनुषत-ध्यान्वोलन मानव-मस्तिष्क की उन्नत नहीं है बल्कि यह ईश्वरीय देन है ।

मुझे हृदय विराम है कि धनुषत-ध्यान्वोलन लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल होगा और ठोस नींव पर समाजवादी समाज-अवस्था की रचना में सहायक बन अयेगा । मैं धारण करता हूँ कि यह ध्यान्वोलन दिन प्रतिदिन तेजी पकड़ता जायेगा ।

मान्दोलन के श्रेष्ठ पहलू

—श्री त्रिबाजी नरहरि भावे

परमार्थ-सत्ता के अस्तित्व में जो संघटन या समुदाय बनता है, वह बड़ा संघटकापी होता है। परमात्म स्वयं मंगल होता है, वहाँ स्वार्थ की बात तो नहीं होती। अहिंसा और समय की गंगा में गोता सगाने के लिए इतना विद्यालय जग समुदाय यहाँ इच्छुद्ध हुआ है, इसलिए मुझे कहना चाहिए कि यह समुदाय मंगल की ओर एक-एक चरण बढ़ा रहा है। अहिंसा और समय के आचरण से अधिक मानविक कार्य और क्या हो सकता है? अतः मंगल या परमार्थ का जो पक्ष बलवान बन रहा है, वह धुम का संकेत है और हमें इसके प्रसार के लिए प्रयास करना चाहिये। आचार्य श्री तुमसीजी इसके लिये प्रयत्नशील हैं। उनमें मैंने सामार्थ्य का अनुभव किया है। विद्या, त्याग और शार्थनिकता से अधिक उनमें एक और श्रेष्ठता है—वे आचरण स्नेह के स्रोत हैं। यह हमारे लिए गौरव का विषय है।

मानव-जीवन का सर्वोच्च ध्येय जीवन-सुखि है। मैं इसी ध्येय की पूर्ति के लिए अणुवृत्त-मान्दोलन को एक आत्मिक और उपयोगी कार्य मानता हूँ। कई भाइयों ने मुझे बताया कि अणुवृत्त के मूल में सम्प्रदाय सिद्धि के तत्त्व हैं। जहाँ तक मैं जान पाया हूँ इसके पीछे यह भावना नहीं है। अगर सम्प्रदाय-सिद्धि के लिए भी अणुवृत्त-मान्दोलन जैसे लोकोपयोगी कार्यक्रम को चलाया जाये तो कोई अठरा माने वाला नहीं है। उस प्रयास से मानव-जीवन की सुखि ही होगी।

जीवन-सुखि के कार्य में मुख्यतः जो बाधाएँ हमारे सामने आती हैं— विचारों की अनुशासिता—संकीर्णशीलता और प्रचार की प्रबलता या आक्रमणशीलता। ये दोनों चरमरूप सदा से जमी धा रही हैं, जो जीवन-मृत्यु को प्रवृत्त

नहीं बनने देती ।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने एक ऐसा विचार रखा कि जो सद्बिचार हमारे हृदय में प्रकटित हुए हैं वे हमारे आचरण में आवें, किन्तु हमने उसका विपरीत धर्म यह समयाया कि जो सद्बिचार हमें मिले हैं वे बूझने को नहीं देने चाहिए । एक व्यायाम विद्या में पारंगत व्यक्ति अपनी विद्या बूझने को नहीं बतलायेगा चाहे उसके व्यवसाय के साथ उसकी विद्या भी क्यों न समाप्त हो जाय । इस तरह हमारे समाज में ज्ञान और विद्या का संकोच होता गया । इसी तरह जाति आधारित ऊँच-नीच की भेद भावना भी विचार-मनुष्यता को बल पहुँचाती रही । असुखता का भाव भी कम बाधक नहीं रहा । इस तरह विचारों की संकोचशीलता के कारण जीवन-सद्दि वा मार्ग धक्का होता गया ।

दूसरा विचार पारचास्य दार्शनिकों ने हमारे सामने यह रखा कि हमने जो सद्बिचार ग्रहण किये हैं उनका अधिनाधिक विस्तार करना चाहिए । किन्तु जीवन में उन्हें आचरित करके ही प्रसारित करना चाहिए, यह धारणा उन्होंने नहीं रखा । भारतीय-दर्शन का जीवन-मूत्र जहाँ 'आचार-प्रथमो धर्म' रहा वहाँ पारचास्य दार्शनिक इस जीवन-मूत्र को सामने रखकर न चले । इससे हुआ यह कि विचार प्रसार को बल मिला किन्तु आचार-पथ कमजोर और पौण्य बनता गया । इसी तरह बहो विद्वान्तों के प्रसार की जबरजस्ती भी रही । एक हाथ में दास्य घोर बूझने ज्ञान में दास्य की जहाँ स्थिति बनी वहाँ विचार प्रसार का धारणा ही प्रमुख था ।

धनुषत धाम्बोसन के बारे में जब मैं सोचता हूँ तो ये शोनों बाधाएँ वहाँ नजर नहीं आती हैं । मान्यव्यक्तिक धारणा वहाँ नहीं है इसलिए विचार-मनुष्यता को स्थान नहीं मिलता । सद्बिचारों को जीवन में उतारने का और भावना प्रसार में हृदय-परिवर्तन का विद्वान्त धमनाया जाता है इन्होंने उसमें आचार धमनाय और धाम्बोस्यगीमता का भाव पनप नहीं पाता । ये शोनों धाम्बोसन के सर्वोपरि श्रेष्ठ पहुँच हैं, जो इसके विचार का मर्मस सँकेत करत हैं ।

इन धाम्बोनों की तरह कुछ सुबिचार भी हमारे सामने हैं । और उनकी भी

एक परम्परा है। भारत का प्राचीन लोक-जीवन सुखी था। मोक्ष-संख्या कम थी इसलिए जीवन-काल ही कम था। जीवन-काल ही कमी के कारण जीवन-सन्तुलन बना रहता था। इस स्थिति से व्यक्ति को सोचने समझने और चिन्तन करने का अवसर मिलता था। इस तरह यहाँ का मोक्ष-जीवन एक योगी की तरह था और यहाँ की संस्कृति योगी-संस्कृति थी। पश्चिम की संस्कृति उद्योग की संस्कृति है। वहाँ की जनता में जीवन-सन्तुलन नहीं है। अतः वहाँ अधिक साधनों और मुक्त-सुविधाओं की अपेक्षा रहती है और उस अपेक्षा-पूर्ति के लिए वहाँ माना प्रयोग करते हैं। यह प्रायोगिक संस्कृति है। मध्यपूर्व के रेगिस्तानों में प्रवासी संस्कृति है और एक बाल-संस्कृति है, जिसे हम बगली जातियों की संस्कृति कह सकते हैं। इस तरह पाँच संस्कृतियाँ हमारे सामने आती हैं। पाँचों संस्कृतियों में ही जीवन-सुखि क कुछ न कुछ अनुकूल तत्व मिल सकते हैं। हमें उन अनुकूलताओं को प्रवृत्त कर जीवन-सुखि के पथ में आगे बढ़ना चाहिए।

इसी तरह मनुष्य के व्यक्तित्व जीवन में भी दो बाधाएँ और पाँच सुविधाएँ हैं।

मन शरीर और आत्मा के संयोग से व्यक्ति का निर्माण होता है। मन का स्वभाव रजोगुण शरीर का स्वभाव तमोगुण और आत्मा का स्वभाव सुक्ति है। रजोगुण और तमोगुण का प्रभु हुए बिना जीवन-सुक्ति नहीं होती अतः इन दोनों बाधाओं को मिटाने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार पाँच सुविधाएँ—सहिष्णु सत्य प्रत्येय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं, जो जीवन-सुखि के मूल तत्व हैं।

इस तरह मैंने अनुभव किया है कि असुख-आत्मोत्थन विचार-अनुभारता और आत्ममग्नता से परे प्रतात्मक आत्मोत्थन है, जिसकी जीवन-सुखि के लिए महती आवश्यकता है। मैं आशा करता हूँ कि यह आत्मोत्थन अभिकाविक प्रसारित होगा और आचार्य श्री तुलसी का विराट् व्यक्तित्व इस पुनीत कार्य में सफलता प्रदान करेगा।

सर्वहितकारी अणुव्रत-मान्दोत्तन

डा० विश्वेश्वरप्रसाद, एम० ए० डी० लिट्
अध्यक्ष—इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

धर्म के सस्रस्र सर्वव्यापी हैं और उनका किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं रहता है। परन्तु जब तक उसे जीवन में चारण नहीं किया जाता धर्म सार्थक नहीं हो सकता अतः धर्म के सस्रस्रों की स्पष्ट परिभाषा और उनपर पूर्णस्नेह बनना ये दो बातें समाज के उद्भव के लिए नितास्त आवश्यक हैं। जब-जब समाज बिगड़ पस हो जाता है और उसका पतन होने लगता है तो इस अवस्था का मूख चारण समाज के व्यक्तियों की धर्म के प्रति उषेसा होती है। यदि समाज उन्नतिहीन होता है तो उसके व्यक्तियों की धर्म के प्रति निष्ठा होती है और अपने आचरण में धर्म के भ्रूष सधर्मी का समुचित व्यवहार करने हैं। अवस्था न उन्नति के मार्ग का पथ प्रदर्शन महापुरुष करते हैं और उनका संकेत प्रबला उपदेश जनता को धर्मरत करने के लिए होता है। हमारे समाज में किसी कारणों से साधारण जन-समुदाय का दृष्टिकोण धार्मिक न रहकर व्यावहारिक हो गया है और प्रवृत्ति उमटी और ही है जिसका प्रमाण यही है कि शक्तिशाली लोग में मनुष्य वर्गव्यहीन हो जाता है और धर्मव्यथा को ही मान्य समझता है। जो संस्था या महापुरुष समाज की इस दुर्बलि का ज्ञान करता है उनके विनोदित ध्यान धारण करता है तथा सहाचार पर बल देता है वह धर्म के योग्य है। धार्मिक भी तुमसी तथा वैराग्य समाज के मुनियों ने जो अणुव्रत-मान्दोत्तन का प्रचार प्रारम्भ किया है वह र्नाप्य है और सर्वव्यापी होने के योग्य भी।

धर्म के पाँच विधिष्ठ महाणु हैं अहिंसा तथा अस्तेय ब्रह्मचर्य और धर्मरत रह। इनमें न प्रत्येक जीवन की मार्गवता महाना और वर्तव्यपरामर्शना के लिए

मनाया है और यदि कोई मनुष्य इन पाँचों को अपने आचरण का द्योतक बनासे तो वह पूर्णरूपेण सम्य और सिद्ध बन जाता है। महात्मा गांधी ने अपने जीवन में इन नियमों का पालन किया और जनता को इनका पालन करने के लिए बस दिया। पूर्व काल से आज तक सभी महापुरुषों ने बर्तमानों और आचार्यों ने चाहे जिस देश या काम में हुए हों इन नियमों को सौकर-कस्याण करी माना है और इनका आचरण करने के लिए पूर्ण वक्त दिया है। आजकल के कमहात्मक हिंसापूर्ण संसार में बहुत सम्य-अधिकारपहरण और दूसरों का धमकाना ये ही मुख्य उद्देश्य हो गये हैं अहिंसा सत्य अन्वेषण या अपरिग्रह का प्रचार करना और प्रत्येक व्यक्ति को इन नियमों के पालन के लिए प्रेरित करना एक महान् कार्य है। अनुग्रह इन नियमों के पालन का ही आन्दोलन है और इसके प्रवर्तक यह प्रयत्न करते हैं कि विशेष वर्गों के स्त्री-पुरुष इन महा नियमों के आधीन अनेक उपनियमों का पालन करें, जिनसे उनका स्वयं आचरण बने और वे समाज विरोधी कार्यों के कर्ता न बनें।

अहिंसा सम्बन्धी उपनियमों में कतिपय ऐसे भी हैं जिनसे कदाचित् कुछ लोग सहमत न हों या अनेक देशों में उनका पूर्ण पालन न हो सके। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि पूर्ण अहिंसक होने के लिए इन उपनियमों पर चमत्ता निदान आवश्यक है। अहिंसा का पुत्रापी सत्य और अचीर्ष्य को छोड़कर नहीं बन सकता अहिंसक के लिए इन दो नियमों पर पूर्णतया दृढ़ होना जरूरी है। इसीलिए इस आन्दोलन ने इन दो नियमों पर भी विशेष बस दिया है। अचीर्ष्य और अपरिग्रह सम्बन्धी उपनियम बहुत ही व्यापक हैं और एक बर्तमान में नैतिकता मानने में विशेष सहायक होंगे। हमारा व्यापारिक दस बन कमाने के लिए आजकल अनेक ऐसे उपायों का आश्रय लेता है जो समाज के लिए घातक हैं। निरत्यप्रति जनता इन समाजविरोधी व्यवसायों के हीन समाज अधिकांश और मनुष्य घातक उद्योगों का अधिकार बनती जा रही है, परन्तु उनका यह व्यापार कम नहीं होता है। यदि अनुग्रह के द्वारा इस समुदाय में नैतिकता की चारखा जल्पन हो जाये और यह अपने पूर्ण आचरण से हट जाये तो देश और समाज का विशेष कस्याण हो सकेगा। इस दृष्टि से अनुग्रह-आन्दोलन के कार्य श्री

उद्देश्य से सभी को सहमत होना चाहिए और इसकी सफलता के लिए प्रार्थना करनी चाहिए ।

हमारा समाज उन्नत है। उसमें वैदिक आचरण के प्रति श्रद्धा जागृत हो और यह आध्यात्मिक उन्नति की धोर धारक हो यह हमारी प्रतिज्ञा है । इसके लिए सर्वांगीण प्रयत्न करना होगा । अनुव्रत-आम्बोजन ने इसी निष्ठा से प्रदर्शन किया है । इसके अनुयोग को पुष्ट करना होगा और ऐसी अनेक संस्थाएँ बनानी होंगी जो नि स्वार्थ और अपरिग्रह रूप से देव और समाज की सेवा कर सकें और पुनः जन-समुदाय में उन्नावरण के प्रति धारणा और यत्न उत्पन्न कर सकें । अनुव्रत-आम्बोजन जैसे-जैसे यह मैत्री हार्दिक कामना है ।

घातो से घाती जले

—श्री जेनेग्रकुमार

घट क बिना पसना ऐनी यात्रा है जिसमें नानो दिशा नहीं है न मंजिल है । इसको घटकता कह सकते हैं । स्वभाव से ही मनुष्य में नाना विकल्प उठते हैं । वह इधर भी चलना चाहता है, उधर भी चलना चाहता है । वह पाता है कि उसमें इच्छाएं अनेक हैं और वे परस्पर विरोधी तक है । एसी प्रबन्ध में एक ही उसे सहाय है कि वह संकल्प प्राप्त करे । घट उस संकल्प का नाम है जिसके हम कर्ता नहीं रह सकते । अपने संकल्प का तो हमी तोड़ भी सकते हैं । प्रकृत होता है कि मन का बनाया संकल्प हमारे निकट एक विकल्प रह जाता है, अर्थात् संकल्प में बल होता है घड़ता का और प्रहम् ता मायावी वस्तु है । यामी अपने संकल्पों को तोड़ने के बहाने उस प्रहम् में हम नय-नये संकल्प खड़े कर सकते हैं किन्तु घट संकल्प में बढ़कर घट टूटता नहीं । वह विकल्प की आबाज है जिसको घट का शब्द देकर हमल घटल कर दिया है । ऐसा घट हमारे पास है तो साफ है कि संकल्प के समय हम सहाय नहीं रह जायेंगे । हवाए घाती है और हमें बहा ले जाती है । इच्छाओं के जड़ग और प्रायेण हमें मरुभूमि डालना चाहते हैं । धोधी न घाय ही सोचिये दूध पत्ता क्या करे ? वह तो इधर-उधर उड़ता ही रह सकता है सभ्य सामन तो उमसे ही नहीं सकता पर आशमी के सामने तो सभ्य है । वह इधर-उधर मटक और मटकता ही रहे तक तो उसकी मनुष्यता ही अक्षय रहती है । जकिन उसे बढ़ना है और बढ़ते चलना है । चलकर किसी ध्येय तक पहुँचना है तो वह भसा कैसे सम्भव हो सकता है अब तक कोई निश्चित संकेत उसके पास न हो । घट म उस वही विभा-संकेत मिलता है । उसके सहारे निष्ठा पैदा होगी है और गति प्रमित पति न रहकर प्रगति बनती है ।

प्रयुक्त यानी वृत्त का धारणम् । यह कोई ऐसा आदर्श नहीं है जिस सम्बन्धकारी कह कर टास दिया जाये । सारा सम्बन्धकार इसके साथ टिक सकता है बल्कि देखे कि सम्बन्धकार उससे पुष्ट बनता है । जीवन बन्द नहीं होता प्रयुक्त सम्बन्धित होता है । अन्तर बिन्दु वह अंकुश नहीं है जो हमारी जीवन शैली को ठठ-बिठठ करता हो वह तो उल्टे अर्थ को स्वस्थ करता है । वह कभी प्राण बेम को कृच्छ्र करने वाला नहीं बनता है बल्कि वह उसे उर्जस्व करता है ।

यहां शैलीबन्दी बन्द है । बहुत से मान लिय गये विधि-विशेष धनधर जीवन के ठेक को मूर्च्छित करते हुए बेल जाते हैं । पश्चिम की ओर से पूर्व पद, विशेषकर भारतवर्ष पर यह आघेन रहा है । पश्चिम की प्रगति पिछनी को शताब्दियों में आश्चर्यकारक रही है । कष्ट विचारकों की टाय में इसका कारण जीवन न प्रति उनका मुक्त भाव है । निषेधों के बन्धन से उसे बन्द नहीं मया है । इसलिए वह झुलकर उठ सकी धीर चारों ओर बढ़ सकी । उल्टे हुए पश्चिम के आये पूब अर्धित धीर स्तम्भ रह गया है । पश्चिम के प्रति वेब के साथ उसे पराजित होना पड़ा है । इसलिए माना जाता है कि जीवन की वह पश्चि जहां माना नियमों धीर निषेधों से उसे बन्धना जाता है विकास को कृच्छ्र बनल जाती है धीर परिपूर्णता की ओर से जाने वाली नहीं है । यह शैलीबन्दी धर्मगत नहीं है धीर दसीलिए सुक हमें बन के धारण से करना है अर्थात् किसी अहंम्यता में से बल के विचार को नहीं माना चाहिए । ऐसी हठवादिता या अकड़ भी मारती है लेकिन यदि मुक्त विवेक वा निर्णय ही तो वह किसी प्रकार जीवन की हानि नहीं करेवा प्रयुक्त उत्कृष्ट ही साधेवा । जीवन शैली का हमारे द्वारा सम्बन्ध इधर-उधर सम्बन्ध हुषा करना है । वह शैलीबन्दी बन्द है । सोचिये कि किनारा यदि नदी वा या नहर वा न हो वा क्या हो ? ऐसी नदी सागर तक नहीं पहुंच सकती न विशेष उपयोगी रह सकती है । यह सही है कि नदी स्वयं धपना किनारा बनाती जाती है धन जीवन-अबाह को हमी उत्कृष्ट किनारा देने जाती हैं धीर मूठ कर मष्ट होने की सम्भावना से बचाये रखते हैं ।

स्पष्ट ही धाव दो प्रकार की जीवन पद्धतियाँ देखी जाती हैं। उनके नीचे दो उत्पन्न और दो दर्शन बड़े हो गये हैं। किन्तु प्रथम उत्पन्न का नहीं भवितु वह तो तात्कालिक है। प्रत्यक्ष व्यवहार का प्रश्न है कि इन परस्पर सम्बन्धों को क्या आधार दें? शोषवाद का समर्पण ठासिक रूप से ही हो सकता है। शोष को निरन्तर नियंत्रण मानकर यहाँ चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। शोष सामने रखकर सीधे बलि इतर बनने को ही नियम मान लिया जाये तो क्या समाज की कोई परिकल्पना सम्भव है? स्पष्ट है कि संयम के बिना शोष ही अमिष्ट है। मनमानापन बनाने की असमर्थता से मानव जीवन का आरम्भ है। पशु को ही इसकी सूझ है। इमीलिए जहाँ वह रहता है उसे अंयन्न कहते हैं। लेकिन मनुष्य को समाज में रहना पड़ता है। समाज यानी जहाँ परस्पर निर्बाह है जहाँ आपसी आदान-प्रदान की कसूर राजनीति है।

प्रथम उमी आपसीपन की आवश्यकता में से उत्पन्न होता है। नागरिकता और सामाजिकता पनप नहीं सकती। धरत आरामी मन को रोक-बाम न सके। यह रोक-बाम अरु कानून के बल से भी की जा सकती है, पर इसीसे वह पूरी सफल और सार्थक नहीं होती। सिपाही की बजह से ही खोर खोरी न कर पायेगा तो समाज में दो ही बर्म रह जायेंगे। एक अघराय करने की सुविधा चाहने वालों का दूसरा उस सुविधा को बनाद अपने हाथ में रखना चाहने वालों का। यह स्थिति मानव के और उसकी संस्कृति के लिए खोमाजमक नहीं है।

प्रथम स्वेच्छा में से प्राप्त होता है यानी उससे दो धोर से बचान होता है। अघराय भाष से और दमन की आवश्यकता से। दमन द्वारा अघराय न होने की रीति-नीति अघराय वृत्ति को कमी काट नहीं पायेगी। सूक्ष्मता से देखें तो दमन से अघराय की जड़ें गहराई में और निचली ही गई हैं। और उसकी बल फैलती ही गई है। प्रथम विचार उन जड़ों को काटने का ही उपाय है।

अखुदर का आश्रोतन के रूप में आचार्य तुलसीदास के नेतृत्व में प्रचार हो रहा है। वह एक नैतिक आश्रोतन है। जैसे बाटी से बाटी जलती है नैतिक आश्रोतन में बस ही व्यक्ति से व्यक्ति में सुभग पैदा होनी चाहिए। मनुष्य का अरित्र मूल अविष्टान है उस पर ही समाज-निर्माण या समाज-अमिष्टि लगी

होगी घोर उम आम्बोसतन की सार्थकता यही नहीं है कि चोर-बाजारी न हो
 रिखत न हो बल्कि वैश्विक आम्बोसतन को यहाँ तक जाना है कि मीनर
 का पानी ईरबरीय कानून व्यक्ति में घोर समाज में इतना जागृत घोर ज्वलन्त
 रहे कि ऊपर दृष्टे घोर जम के जोर स मनबाया जाने बागा कानून घनाचपर
 हो जाये । जब मुद्र मात्र विश्व-भाजन के लिए अग्रहीय हो जाय घोर घन
 घन में विज्ञान का घोर बम का उपयोग कोटी मूर्तता कीलने मय घानक
 जब स्वयं घारम-भास्ता हो घोर प्रघासित अनुभव करने की घावसकना में
 कोई न रहे जाये ।

धनुव्रत-आम्बोसतन को सर्वथा स्व-घासिन अर्थात् घारम-भासिन समाज-
 व्यवस्था को उदय में आने के समय को सदा घपने समझ उपस्थित करके
 चलना है ।

अणुव्रत भाव-क्रान्ति का प्रतीक

—श्री हरिदास द्विवेदी

सम्पादक—मधुभारत टाहमस, बम्बई

अणुव्रत जैनधर्म के अनुसार गृहस्थ धर्म का एक अंग है। जैनधर्म का मूल सिद्धांत है—अहिंसा। अहिंसा को गृहस्थ-जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए जिन व्रतों की आवश्यकता है वे अणुव्रत बने जाते हैं। समय के साथ इन व्रतों में कोई मौलिक अन्तर नहीं आता। विनकधीन जैन आचार्य समय-समय पर जनता को बताते हैं कि वह अपनी समस्याओं के समाधानार्थ किस प्रकार इन व्रतों का पालन करे। जैनाचार्य श्री तुलसी अपने अनुयायियों को जिनकी समस्या हमारे देश में गम्य नहीं है अणुव्रतों में पूरी निष्ठा रखने की सलाह देते हैं। सलाह तो अन्य जैनाचार्य भी देते हैं, किन्तु आचार्य श्री तुलसी ने अपने अणुव्रत सम्बन्धी विचारों के प्रचार के लिए कमठ प्रचारकों का जो संगठन बना लिया है वह उनकी मौलिक सूक्ष्म एवं विभिन्नता का चोकर है। इस संगठन को देखकर ही लोग अणुव्रत प्रचार को 'आन्दोलन' की कोटि में स्वीकार करते हैं। प्रचारकों में केवल जैन मुनि ही नहीं कोटयवीर गृहस्थ भी हैं। जो स्वयं अणुव्रती न हो उनके प्रचार का प्रभाव पड़ नहीं सकता। अतः बहुत से जनी गृहस्थों को भी अणुव्रत-आन्दोलन के संगठन में स्थान देने के लिए अपने आचरण को सुधारने की ओर एक सीमा तक त्याग करने की आवश्यकता हुई। समाज-हित की दृष्टि से आन्दोलन का व्यक्तिगत व्यवहार-शुद्धि से सम्बन्धित यह पहलू काफ़ी महत्व का है। जो गृहस्थ अणुव्रत के प्रचारक बने हैं उन सभी के सारे व्यवहार शुद्ध हो गये इस प्रकार का कोई दावा करना यद्यपि सम्भव न हो तो भी आन्दोलन का महत्व कम नहीं हो जाता। विचार और व्यवहार-शुद्धि के इस आन्दोलन के प्रति लोगों में बोझी भी निष्ठा पैदा हो जाना एक उत्तम लक्षण है। मन की भूमि में एक बार यह भाव जपी जाय पड़ा तो बाह में वह बड़ा बृह भी बन सकता है।

हिमा हमारे हाथ पाव जीम समयका घात की शिवाघों में नहीं रहती । उसभार, बन्दूक धीर तोप में भी बह नहीं रहती । उसका निवास-स्वान मन में है । धनुषत-धाम्नीनन का उद्देश्य युद्धस्थों की मन-शुद्धि है । जिस मन में भोग स परछेज रखने की प्रवृत्ति छोटे रूप में भी जन जायेगी उसमें धीरे-धीरे हिता के प्रवेश करने की धारणा भी कम होती जायेगी धीर जब भोग का स्वान त्याग से सेवा सब हिता का स्वान सम्पूर्ण ग्रहणा से लेनी । भोग धीर हिता का घट्ट सम्बन्ध है । धनुषती भोग को मर्यादित रखने के लिए स्वयं तैयार होता है तथा दूसरों को भी तैयार करने की चेष्टा करता है । इस प्रकार वह हिता को मर्यादित करने का प्रयास करता है । मानव-धर्म के प्रचार के लिए इसने उत्तम मार्ग ही क्या सञ्चाला है ?

धनुषत-धाम्नीनन जीवनधर्म के ही नहीं संसार के सभी धर्मों के अनुसूत है । योगीरान धीरुष्ण ने अपने को वेदों में सामवेद माना है । सामवेद भाव प्रधान है । यदि किसी के भीतर भाव-शान्ति हो जाये तो उसे शान्ति के अनुपात में शान्तबिक्रम ज्ञान प्राप्त होकर रहता है । सामवेद का उद्देश्य ही भाव-शान्ति है । योगीरान धीरुष्ण भी भाव-शान्ति पर इतना बल देते हैं कि वे अपने प्राणका भाव-शान्ति उलान करने कामा सामवेद मानते हैं । धनुषत-धाम्नीनन भी तो भाव-शान्ति पर ही अधिक बल देता है । भाव एकमुच बचने तो व्यवहार अनरिचरित रह नहीं सकते ।

सञ्चाला जीवन शीत है ? जीम बहू है जो 'जिन' को माने । 'जिन' शर का ध्य है—जय-जीम । जीवन किम पर ? राय-श्रेय धारि पर । 'जिन' में विरवान करने का धर्म ही है—राय-श्रेय के पराजित करने की बांछनीयता में विरवान करना । हमारे राय श्रेयों का कारण कामनाएँ बतार्कि मर् हैं । गीता में कुरा ताप का एक मात्र कारण काम की धाना बया है । धनुषत-धाम्नीनन मनुष्य की कामनाओं पर धनुष रखने का धाम्नीनन है । बही कारण है कि प्राचार्य धीरुष्णमी शरत मंत्रवापित धनुषत-मन्वगी संवत्त शीतवाकस्या में होते हुए भी जिन शिगी विचारणीम ध्यरित य मन्वर्क में प्राया उते ही धरनी धीर कुरा न कुरा धारुष्ट करने में ममर्क हो गया ।

शासन-व्यवस्था और अणुव्रत

—श्री रामसेवक श्रीवास्तव

स० सम्पादक—नवभारत टाइम्स, बम्बई

धार्मिक सुखानुभूति के लिए ही नहीं भौतिक एवं धार्मिक उन्नति की कल्पना का आधार भी नैतिकता से परे नहीं माना जा सकता। एमरसन का परम्वि यदि प्रजातन्त्र ही है तो हमें प्रजा के धारण को ऊंचा उठाना ही होगा; अन्यथा प्रजा के लिए, प्रजा द्वारा प्रजा के शासन की परिभाषा ही बरसगी होगी। इससे शासन की सर्वोत्कृष्ट प्रणति का आधार ही नष्ट हो जायेगा।

विद्या के विकास से राजनैतिक चेतना जड़ीपट्ट करना सम्भव हो सकेगा इसमें सन्देह नहीं किन्तु समय और साधना का पाठ पढ़ावे बिना अन्धे संस्कारों का बीजारोपण बालुका से ढेर निकालने जैसा ही होगा। जब प्रजा ही ईमानदार न होगी तो प्रजा के प्रतिनिधित्व द्वारा संघालित शासन कहां तक स्वच्छ एवं कम्पन रहित रह सकेगा? अतः राजनैतिक चेतना जागृत करने के साथ साथ धार्मिक मारुत का नैतिक स्तर उठाना कहीं अधिक जरूरी है। रसक भक्षक न बनें यह नैतिकता के विकास द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इस धीरे धीरे भी सत्ता या धार्मिक नामधाय सार्वजनिक तथा सार्वभौमिक अहंश सेकर अस्तर होते हैं उसके प्रभाव को राष्ट्रीयता का अंत ही माना जायेगा।

धार्मिक ही तुलसी का अणुव्रत-आत्मोत्तम ऐसा ही एक अमिमत प्रयास है, जो मानव की सुष्ठु धार्मिक चेतना को जगाकर उसे जीवन के हर पहलू में अस्तरण के सोपान की प्राप्ति कराता है। अणुव्रतों की तीन श्रेणियाँ हैं—

- (१) प्रवेशक अणुव्रत
- (२) अणुव्रत

(३) विविष्ट धनुषी

ये मितात्म स्वामाधिक धीर विरामोत्सुख जीवन की योगियां ही हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि जतना जब प्रवेशक धनुषी होती तो उसके प्रतिनिधि धनुषी धीर सामक विविष्टाधनुषी हो सकेंगे। प्रजातन्त्र का मूलोद्देश्य है भी ऐम ही विविष्ट साधकों के ह्रास में शासन-मन्त्र र्णयना ताकि सामन क करम सत्य की प्राप्ति सम्भव हो। राम यदि विविष्टाधनुषी के समस्त गुणों से सम्पन्न न होते तो रामराज्य की कल्पना का आधार ही हमें कहा स मितता ?

धर्म के मूलमूल सिद्धान्त समस्त मानव-समाज में समान ही हैं धीर यथावत् तो यह है कि जिस धर्म या सम्प्रदाय में इन सिद्धान्तों का ह्रास होम मयता है या इनकी उल्लेख की जाने मयती है उसका मन्त्र भी प्रतिपाद हो जाना है। अतः धर्म को स्वाधिरव प्रदान करम के लिए उयक मूलाधार को ठोम बनाये रखना अत्यावश्यक ही नहीं अपरिहार्म होमा।

धनुषत-मान्दोलन के द्वारा धार्मिक धीर तुलसी ने धर्मधर्म की विविष्टता का उन्मयन तो किया है मानव-धर्म की समानता को चरितार्थ करने के लिए धर्मस्य प्ररुणा-श्लोथ भी प्रस्तुत कर दिया है। धनुषी होने पर कोई भी धर्माधमम्बी धर्म का पूर्ण ज्ञाता धीर पीपक बन सक्ता है इनमें सत्येह नहीं। साध ही बहु धर्म धर्मों के अधिरुष्य को प्राप्त कर मानव-धर्म का प्रबल समर्थक भी बन सक्ता है धीर एमे व्यक्ति के ह्रास में शासन-मूल का सीता जाना ममा किम त्रिय धीर मुलाकर म होमा ?

मरा रूढ़ विरवाग है कि धनुषत-मान्दोलन की सफलता राष्ट्रीय उत्थान की मयसे बड़ी सफलता होगी क्योंकि राष्ट्र की समस्त कुटुम्बों धीर धर्माध अधिधर्मों का निराकरण इन धर्मों के धारण करने से सम्भव हा मक्ता है। धनुषत समस्त जन-समुदाय धनुषत के सिद्धान्तों को स्वीकार कर मे तो धर्म मे धर्म हम देव के लिए धूमिम की आवश्यकता तो रहेगी ही नहीं धीर ममा की अन्तम यदि रही भी तो नमस्यवन् । काय । बहु दिन धाये जब कि भारत धानी प्राचीन परम्परा के निम्न उदाहरण को धनुषत के रूप में पुनः प्राची के

प्रापक में बमकाये और पक्षिम उस ज्योति को पाकर निहास हो उठे । अशु-
 बर्णों का भय फिर जाता रहेगा और मानव को स्वर्णनात्मक पक्षि और क्षमता
 का मया पाठ सीखने की मिसेया । जैन-समुदाय का कठोर साधनामय जीवन
 यदि इस कार्य में श्रौतों की अपेक्षा अधिक शीघ्रतापूर्वक सफलता प्राप्त कर तो
 इसमें कोई आश्चर्य नहीं ।



मानव जीवन की सार्थकता का एक प्रबोध उपाय

—रबानी की प्रमपुरीजी

विशाल विश्व के प्रत्येक प्राणी का ध्येय है—बुल-निवृत्ति एवं सुख प्राप्ति। इस उद्देश्य की सिद्धि ही उनकी समस्त चप्टार्यों का केन्द्र बना हुआ है। इसकी पूर्ति के लिए ही उनकी गारीरिक, मानसिक, ऐन्द्रियिक आदि धारी प्रकृतियाँ होती हैं। विवेकी धीर विचारशील होने का अनिवार्य रखनेवासा मानव प्राणी तो अपने लक्ष्य की सिद्ध करने के लिए धन्यों को मरम भ्रष्ट करने पर उठाव रहता है। धने सुप्तक दुःख को दूर करने के लिए सुखों को प्रवार दुःख कापर में हुबोव हुए तनिक भी धापा-धीका नहीं धीचठा। धने धापको मुली बनाने के लिए धन्यों का मुल सीगन में लतर रहता है न तो मूड बोमने में भिक्कता है धीर न धीरी करने में ही धरमाता है। दुःख निवृत्ति एवं सुख प्राप्ति के लार्धनों का धनुचित उपायों द्वारा न्प्रह करने में तन मन धन धारि की धरिठ का ध्यय प्रधुर प्रमाण म करता रहता है। लपाधि न तो दुःख दूर होता धीर न मुल समीप धाना ही धीचठा है। दुःख हटाने हटता नहीं प्रधुव बिना धुलाये ही दुःख धीर दुःख के धापन मान न मान नद बेटये हैं धीर सुख तो ह्कार बुलाने पर, ह्कार प्रधम करन पर भी दूरानिदूर भागता धिरता है। कश्चित् प्राप्ठ होता भी है। ना उनमें धीर भी धधिक मुल-भोग की लामना को तीव्रतम रूप में धरीष्ट कर एक धनकारे में प्रधीन हो जाता है। उम धानिक मुद्राधान ध लुप्ति होनी तो धनध रही उमदी विधम-भोग की धासना तीव्र हो उमनी है धीर धसन्धीय की धाग की प्रधग्धरुधेण भङ्का रीठी है।

धन प्रधार धपाह, धनक धधिरल प्रधरन करने-करने नद-धद लोध धोध हो जाने पर भी अब धपकता के धरान दुर्जन ही नहीं, धनम्भध मामुन धन है, धब कीई कीई विचारणील ध्यक्ति धग्धेह करने लपते हैं कि 'धग्भध है उचित उगायी की धानधारी न हान के धरण धन धग्भध में धिये जाने धाते

मरे प्रयत्न ही गन्त हों घट-घपन से ज्यादा जानकारी रखने वाल किसी सञ्जन पुरुष की सम्मति लेनी चाहिए। अपने अन्वेष्ट का समाधान चाहने वाली अपनी विज्ञाना को प्राप्त करने के लिए विज्ञानवान् सञ्जन पुरुष की शोच में जब वह व्यक्ति अपने चारों ओर दृष्टि डालता है तब उस प्रायः सभी मनुष्य अपने समान ही पिताप संसृप्त आशा-सृष्टि की भाव में जलते-सुलसले विषय-वासना से विह्वल मुक्त की शोच में हड़काने कृते की भाँति इपर-उपर मारे-मारे फिरते अद्यान्त के अज्ञानों के द्वारा उत्पीड़ित काम-क्रीम आदि स क्रमशः बुद्ध सागर में निमग्न और अग्रास्त हृदय ही दीखते हैं। जो समर्थ व शान्त हृदय हैं उन्हें देखकर उन्हें बूब आश्वासन मिलता है कि 'अवश्य यह सञ्जन मरी विरकाक्षित बुद्ध निवृत्ति एवं मुक्त प्राप्ति से मुझे निश्चय होंगे क्योंकि वे स्वयं उससे मिल चुके हैं।

उपरोक्त विद्वानु व्यक्ति उन विज्ञानवान् सञ्जन के समीप पहुँचकर प्रार्थना करता है— 'मदबन् ! किन उपायों से आपने अपने विविध दुःखों की एवं परम मुक्त की प्राप्ति कर ली है ? क्या कोई और भी कर सकता है ? यदि हाँ तो आप उन साधनों की मुझ पर अनुकम्पा कीजिये ? उसके उत्तर में अणुवत् का उपदेश देते हुए उन समझदार सञ्जन ने कहा— 'बुद्ध पाप का फल है, पाप के न रहने पर बुद्ध नहीं रह सकता और पाप होता है हिंसा असत्य अस्तेय अद्रव्यार्थ तथा परिग्रह से। सप्रयोजन या निष्प्रयोजन क्रिती को भी सताना हिंसा है। अमुक बात के बारे में अपने मन का जो आशय हो उसके विपरीत सोचना असत्य है। दूसरों की अनुपयोगी चीजों को भी उनकी प्रसन्नता पूर्वक प्राप्ता के बिना ही अपने उपयोग में लाना या लाने का संकल्प करना स्तेय (चोरी) है। लोक तथा शास्त्र-मर्यादा के विरुद्ध विषय भोगना अद्रव्यार्थ है। भोग्य पदार्थों का नाशायन ठीकीं से तथा अकूरत से ज्यादा बटोरना परिग्रह है। इन पापों से या इनमें से किसी एक-दो से भी पाप पैदा होता रहता है।

पाप पैदा होने ही न पावे इसलिए हिंसा के विरुद्ध अहिंसा असत्य के विरुद्ध सत्य स्तेय के विरुद्ध अस्तेय अद्रव्यार्थ के विरुद्ध द्रव्यार्थ और परिग्रह के विरुद्ध अपरिग्रह, बल का अनुष्ठान, मानवता के भाव करते रहना चाहिए।

जीवन की रेखाएँ

—श्री मिथीलाल गणेशन
बिलामन्त्री मध्यप्रदेश

चित्र के लिए रेखाएँ अपेक्षित हैं। बिना रेखा के चित्र नहीं बन सकता। चित्रकार कितना ही सिद्धहस्त क्यों न हो बिना रेखा वह चित्र नहीं बना सकता चाहे वह चित्रकार ईस्वर भी क्यों न हो ? इसी तरह जीवन-सुधार की कुदृष्टांत से पूर्व उसका सुन्दर चित्र खींचना होना रेखाएँ खींचनी होंगी। बिना रेखाओं के जीवन में ताकत नहीं आ सकती वह अविन्यासी नहीं होता उसमें बुराइयों का सामना करने की शक्ति नहीं होती।

व्रत जीवन की रेखाएँ हैं। यह आवश्यक है कि व्रतों की रेखाएँ जीवन में विद्ये और हम उन पर अपने जीवन की कलम को चलायें। आज का हिन्दुस्तान आज से बस वर्ष पूर्व के हिन्दुस्तान से भिन्न है। पहले यहाँ राजा राज्य करते थे संघर्षों का शासन था। अब यहाँ जनता का राज्य है, व्रत और अधिक जरूरी है कि हमारे देशवासियों के जीवन में व्रत आयें। वे बुराइयों से परखेज करें और विभुक्त नागरिक जीवन का निर्माण करें। उनके जीवन में झूठ न हो चोरी करने का इरादा न हो संघर्ष की वृत्ति न हो। उनके जीवन में अहिंसा हो सेवा का व्रत हो।

अणुव्रत-मान्दोसन मेरी दृष्टि में आज की राष्ट्रीय आवश्यकता है। मुझे इससे मतसब नहीं कि मान्दोसन किस शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। हमें यहाँ उसके अन्दर की कठोर वास्तविकता को देखना है। आज जीवन में व्रतों की रेखाएँ नहीं हैं। इस तरह जीवन की कमबोरियों से ही तो संस्कृति का पतन होता है। यह उत्थान और पतन की परम्परा बसी आ रही है। भारत में

जब-जब संस्कृति का उदयान हुआ है वह भोग के सहारे नहीं त्याग की शक्ति से हुआ है। प्रायः जीवन में त्याग बीना है, उसकी रूखाएँ लीचनी हैं। बिना पुरुषार्थ साधना धीर कठोर प्रतिष्ठा के जीवन में त्याग का उदयान सम्भव नहीं।

धरत वह इतना सरल होना तो आचार्यजी को इतना पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता धीर धनुषतियों की संख्या प्रायः हजारों नहीं लाखों होती।

मैं धनुषत-धाम्पोलन को व्यक्ति रूप से लेकर समष्टि रूप तक देखता हूँ। मेरी यह निश्चित माय्यता है कि बंध के सभी स्त्री-पुरुष आवास-मुक्त रहें जीवन में उतारो-तारो उदयान का एक बहुत बड़ा काम होगा। लेकिन जो धाम्पोलन की धीर समुदाय नहीं हैं, जिसने साधना नहीं की वह शर्तों पर कैसे बाधता है? मेरे मन में शर्तों के प्रति भय है। विस्वास है साधना नहीं है फिर भी भयभीत के प्रति भय है। पशुधर्म की धीर जाने की बंध को उभे धीर से जाने की समझा है। अपनी धर्मबद्धता को भाइयों के समझ रखना भी अपना कर्तव्य समझता हूँ धीर इंग्लिश यहाँ आया भी है।

बहुत से भोग कहते हैं पर धीर आचार्य हैं। यह कहते उनके दिल में धर्मबद्धता नहीं होती। वे भयंकर शर्तों पर चलते नहीं अपनी धुँडी प्रवृत्तियों को बचाते नहीं धीर आत्म-नियमन द्वारा आ नहीं मार्ग पर चलते हैं उन्हें हीन समझते हैं। यह समझ है। किसी के प्रति अविद्वान बनना अहिंसा नहीं। अहिंसा वह आचरण है जिसमें उमके पाप-पड़ोस वाले निर्मल हो जायें। मेरे बहोमी को यह विद्वान् हा जाने कि मैं अविद्वान् हूँ। मेरे द्वारा उनका किसी भी तरह का अहित होने वाला नहीं है। यही सबसे बड़ी अहिंसा है। हिन्दुस्तान प्रायः यह घोषणा करती है कि वह मुक्त नहीं करेगा निरन्तर रहेगा तो उमके पठ-अप के अस्त सीमाओं पर राहत मिलती है। इन्हीं तरह प्रायः यदि हम धीर अमेरिका घोषणा कर दें तो नगर को बड़ी शक्ति मिलेगी धर्म का आनाकरण बनेगा। यह शर्तों की शक्ति है। इन शर्तों को कर्ते धरत इन्हीं में धनुष की शक्ति है तो वह बाहर नहीं धर्म-नगर करेगा धर्म-धुँडी करेगा। धरत का नाम धर्म-धरत है बाहर नहीं। धनुषत मानव को समाज

सेवा के लिए इस्थान बनाकर बाहर निकामेगा जो कठोर वही होगी और भयंकर प्रसोमन से भी डिगनेवासे न हूँ।

हम गिर गये, हमारा पतन हो गया यह कहते सुनता हूँ तो कुछ होता है। मैं वह मानने को बिलकुल तैयार नहीं कि हमारा इतना पतन हो गया है। हूँ भैतिक बराबर कुछ कमजोर भवस हो गया है। धाम हममें बुराई का सामना करने के लिए एक सिपाही की-सी शक्ति नहीं है। धाचार्य भी तुलसी ने ऐसे समय में अशुभों की मौलिक विचारधारा रखी है।

मेरी दृष्टि में बही सच्चा साधक ज्ञानी सन्त और महात्मा है जिसका विवेक धर्मरग की वचार्थता को पकड़ता है। मेरी यह निश्चित मान्यता है कि बिना इन बातों को धपगाये बेसवासियों के प्रति कल्याण पैदा नहीं हो सकती। धाप धपनी इच्छाओं को भी बढ़ाये और कल्याण भी पैदा करें, यह दोनों एक साथ सम्भव नहीं है। कल्याण हृदय से पैदा होगी सिर्फ कहने से नहीं।

धाचार्य भी तुलसी के दर्शन और अशुभों के मिलने की उत्कण्ठा ने मुझे यहाँ ला खड़ा किया है। मैं धाधा रखता हूँ कि धाप अशुभों को विचारों तक ही सीमित नहीं रखेंगे उन्हें धाधार तक से जार्ये। धपर बातों की एक-एक बात जीवन में उतर गई तो निश्चित समझिये इन हजारों बीपकों के प्रकाश से हमारा बेस त्वासियों का महपियों का उच्च नापरिकों का वेध बनेगा और एक बार फिर वह धात्म-सी से जपमगा उठेगा। मैं समझता हूँ कि अशुभत धान्दोमन से हमें बड़ा ध्यापक लाभ मिलेगा। अशुभत-धान्दोमन हमें सन्मार्ग पर ले जाता है इन्वामियत की राह दिखाता है और हमारे भ्रुक की तरक्की में उसका महान् योग है।



अर्जुन का प्रश्न और अणुप्रतवाद

—श्री ज्ञानबन्धु

सम्पादक—नरसीत

मीठा में अर्जुन ने भीकूप्य से एक प्रश्न पूछा है—

‘स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्वस्य कैवलय ।

स्थितधीः किं प्रभावेत किमस्तीत जज्ञेत किम् ?’

हे कैवलय ! समाधि में स्थित स्थिर बुद्धि वाले पुरुष का सङ्गण क्या है ? स्थिर बुद्धि वाली पुरुष कैसे नचन बोलता है ? कैसे बहता है ? कैसे चलता है ?

ऐसे उठना बैठना, चलना घूमना मनुष्य की बहुत साधारण क्रियाएँ हैं, जिनकी ओर किसी का ध्यान जल्दी नहीं जाता पर इन सहज क्रियाओं में भी जिसने मनुष्य बिना ध्यान दिये धाचरित्य करता है वस्तुतः मनुष्य के अग्रकट मन का व्यक्तित्व प्रतिपाद्य मिश्रण करता है । मनुष्य चाहे किसी भी स्थिति को क्यों न पहुँच जावे उसके उस पद से वैशिक जीवन की इन छोटी-छोटी बातों की महत्ता में कोई कमी नहीं आती है ।

इसीलिए भीकूप्य के मुख से योमी, स्थितप्रज्ञ समाधिस्व धारि के महारम्य को सुनकर अर्जुन ने उनसे पूछा कि धार्यवर ! वह बताइये कि स्थितबुद्धि वाले व्यक्ति का साधारण धाचरण कैसा होगा ?

मैं देता नहीं जानता कि बीता में जिसके लिए योमी स्थित-बुद्धि समाधिस्व धारि की संज्ञाएँ कूप्य ने प्रकृत की हैं, वह कोई आलौकिक व्यक्ति होगा है बल्कि मैं समझता हूँ कि कूप्य का योमी अथवा स्थितप्रज्ञ कूप्य की बल्यता का धार्य-मुरप है जो न तो समाज के प्रति पनामनवाची होने का समर्थक होता है और न समाज की ऊँची-नीची मीठी-कड़वी परिस्थितियों के प्रति धार्मिक रहकर धर्षित की विमर्श में आने वाला के मुख के अनुभव करने का

समर्थात् होता है। उनकी कल्पना का आधार पुरुष गृहस्थ-जीवन में गृहस्थ रह कर, रण में प्रसन्न-वस्त्र उद्यमकर, उत्साह के क्षणों में उत्समसित होकर भी समाधिस्थ कहे जान का अधिकारी है। उनके ज्ञान उनके कर्म और उनकी भक्ति की योग्यता की इन धारणाओं को मैं स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानता बल्कि मैं उनको एक दूसरे का अन्योन्याभारी मानता हूँ।

अपने इस विश्वास के कारण मैं इस प्रश्न का यह उत्तर भी दे देना चाहूँगा जिसे श्रीकृष्ण ने दिया है। श्रीकृष्ण ने उससे उत्तर में कहा है—

प्रजहाति यथा कामान् सर्वान् पार्थ । मनोपतान् ।
 धात्मभ्येवात्मना तुष्यं स्थितप्रज्ञ स्तबोध्यत ॥
 बुभुक्षेभ्यनुद्विगमना मुषेपु विमतस्वृहः ।
 भीतरागमम ज्ञेयं स्थितधी मुनि उच्यते ॥
 यं सर्वकालमित्येह स्तत्सुप्राप्य सुमाशुभम् ।
 मानिसन्वति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
 यथा संहरते पार्थ कूर्मसिंहानीम सर्वश ।
 इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
 विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य वैहिनः ।
 रसवच्चै रसोभ्यस्य पर बुष्यथा निवर्तते ॥
 यततो ह्यपि कौन्तेय । पुण्यस्य विपरिचतः ।
 इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसन्नं मनः ॥
 तानि सर्वसिद्धि संयस्य पुञ्जतप्रासीत तत्परः ।
 यो हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
 प्यायतो विषयान्मुक्तं सङ्गं स्तेषूपस्थायते ।
 संवात्संवायते काम कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
 क्रोधाद्भ्रमति संभोह संभोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
 स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रवृत्त्ययति ॥
 रायद्देवियुवतेस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
 धात्मवत्सर्वविधेयारमा प्रसादमपिमिच्छति ॥

अर्जुन का प्रश्न और भण्डवतवाह

—श्री ब्रह्मचर्य
सम्पादक—मदनमोहन

मीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से एक प्रश्न पूछा है—

“स्वितप्रव्रतस्य का भाषा समाभित्त्वस्य वेदाय ।

स्वितधी कि प्रभावेत किमासीत्त ब्रजेत किम् ?

हे केशव ! समाधि में स्थित शिखर बुद्धि वाले पुरुष का सहाय्य क्या है ? स्थिर बुद्धि वाले पुरुष कैसे बचन बोलता है ? कैसे बैठता है ? कैसे चलता है ?

ऐसे उटना बैठना खसना झुमना मनुष्य की बहुत साधारण क्रियाएँ हैं जिनकी धीर किसी का ध्यान आती नहीं जाती पर इन सहज क्रियाओं में भी जिसने मनुष्य बिना ध्यान दिये आचरित करता है वस्तुतः मनुष्य के अग्रकट मन का व्यक्तित्व प्रतिपादन निरस्त करता है। मनुष्य चाहे किसी भी स्थिति को क्यों न पहुँच जाये उसके अंत पर से दैनिक जीवन की इन छोटी-छोटी बातों की महत्ता में कोई कमी नहीं आती है।

इसीलिए श्रीकृष्ण के मुख से योगी स्वितप्रव्र समाभित्त्व आदि के महामय्य को सुनकर अर्जुन ने उनसे पूछा कि आचर ! यह बताइये कि स्वितबुद्धि वाले व्यक्ति का साधारण आचरण कैसा होता है ?

यै ऐसा नहीं मानता कि मीता में जिसके लिए योगी स्वित-बुद्धि समाभित्त्व आदि की संज्ञाएँ कृष्ण ने प्रयुक्त की हैं, वह कोई अतीतिक व्यक्ति होता है बल्कि मैं समझता हूँ कि कृष्ण का योगी धरवा स्वितप्रव्र कृष्ण की कल्पना का आदर्श-मुरव है जो न तो समाज के प्रति पलायनवादी होने का समर्पक होता है और न समाज की ऊँची-नीची मीठी-कड़वी परिस्थितियों के प्रति अहमव्य उठकर अर्थात् की निनक में धरने अन्तः के गुण के अनुभव करने का

उपसर्ग होता है। उनकी कर्मना का भारों पुरुष गृहस्थ-जीवन में गृहस्थ रह कर, एण में अस्व-सस्व उठकर उस्मास के शर्णों में उस्तसित होकर भी समाधिस्थ कहे जाने का अधिकारी है। उनके ज्ञान उनके कर्म और उनकी शक्ति की योग्यता की इन धारणाओं को ही स्वतन्त्र उच्चा नहीं मानता बल्कि ही उनको एक दूसरे का अभ्योत्थायनी मानता है।

अपने इस विश्वास के कारण ही इस प्रश्न का यह उत्तर भी दे देना चाहूंगा, जिसे श्रीकृष्ण ने दिया है। श्रीकृष्ण ने उसके उत्तर में कहा है—

प्रज्जहाति यथा कामान् सर्वान् पार्थ । मनोपतन् ॥
 आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञः स्तबोध्यत ॥
 बुद्धेर्बुद्धिगमना मुक्षेपु विगतस्युहः ।
 भीतराममय व्येव स्मितधी मुनि रक्ष्यते ॥
 यः सर्वज्ञानमित्सेह स्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
 नाभिनन्दति न हृष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
 यथा सहरते चायं कूर्मज्जलीव सवसः ।
 इन्द्रियाणीन्द्रियाण्यस्य स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
 विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य रेहितः ।
 रसवर्जं रतोध्यस्य पर बुद्ध्या निवर्तते ॥
 मततो ह्यपि कौन्तेय ! पुण्यस्य विपरिषत् ।
 इन्द्रियाणि प्रमाणीति हरति प्रसभं मनः ॥
 तानि सर्वाणि सयस्य पुस्तप्रासीत मत्परः ।
 ज्ञेहि हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
 ध्यायतो विषयान्मुक्तं सङ्गं स्तैषूपजायते ।
 संग्गात्संजायते काम कामारब्धोऽभिजायते ॥
 कोवाङ्मनसि समोहं समीहात्स्मृतिविभ्रमः ।
 स्मृतिश्च धाद् बुद्धिबाधो बुद्धिनाशस्तस्यस्मृतिः ॥
 रागद्वेषविमूर्तस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
 आत्मवर्षोऽबधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

धर्मन । जिस काम में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, उस काम में धारणा से ही धारणा में संतुष्ट हुआ स्थिर बुद्धिवाला कहा जाता है ।

तथा बुद्धों की प्राप्ति में उद्योग रहित है मन जिसका घोर मुखों की प्राप्ति में जिसकी स्पृहा बुर हा गई है तथा जिसके राग भय क्रोध धादि बन्ध हो गये हों ऐसे मुनि को स्थिर बुद्धि कहते हैं ।

जो पुरुष सर्वत्र स्मृति रहित हुआ होता है तथा धन धीर धर्मम बातावरण में न प्रसन्न होता है धीर न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर बुद्धि है ।

जैसे कपुषा अपने बंधों को समेट लेता है वैसे ही पुरुष जब सब घोर से अपनी इन्द्रियों को विषयों से समेट लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है ।

इन्द्रियों द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के भी केवल विषय निवृत्त हो पाते हैं परन्तु उसका राग निवृत्त नहीं हो पाता । स्थिर बुद्धि पुरुष वह है, जो राग ने भी मुक्त हो गया हो ।

हे धर्मन ! मूल करने बुद्धिमान पुरुष के भी मन को यह प्रसन्न स्वभाव वाली इन्द्रियां बहात्कार से दूर लेती हैं ।

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि सम्पूर्ण इन्द्रियों को बन्ध में करके समाहित चित्त हुआ मरे कारण स्थिर हो क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियां बन्ध में होती हैं उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है ।

हे धर्मन ! मन रहित इन्द्रियों को बन्ध में करके मत्सर न होने के कारण मन के द्वारा विषयों का चिन्तन होता है धीर विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में ध्यानस्थ हो जाती है धीर ध्यानस्थ से उन विषयों की वाचना उत्पन्न होती है धीर वाचना में बिन्ध पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है । क्रोध ने धर्षिबेद उत्पन्न होता है धीर धर्षिबेद में स्मरण-धर्म प्रविष्ट होती है स्मृति के प्रविष्ट हो जाने से ज्ञान-धर्म का ज्ञान होता है धीर बुद्धि बन्ध होने में मनुष्य अपने धर्म मापन से विर जाता है ।

परन्तु स्वाधीन धर्म-करण नामा पुरुष राग-द्वेष रहित अपने बन्ध में भी दूर इन्द्रियों द्वारा विषयों की भोगना हुआ धर्म-करण की प्रसन्नता की प्राप्ति

होता है।

गीता में धर्म के प्रश्न के उत्तर की सभी धर्म्य पुरानी कही जा सकती है पर धर्म का प्रश्न आज भी समय संसार के लिए पूर्ववत् अपने स्थान पर बना है कि मानव को कैसे ठठना बैठना चाहिए जिससे कि उसकी इन प्रक्रियाओं से बेध राष्ट्र बचवा मानव-जाति की प्रतिष्ठा पर धम्मा न धाये।

मेरा ऐसा विचार है कि आचार्य तुमसी द्वारा संज्ञानित अखुण्ड इस प्रश्न का उत्तर है। आज के युग में बस्तुतः समाज का एक ऐसा विकृत रूप व्यक्ति पर छा गया है और व्यक्ति की ऐसी प्रबुद्धता वृष्टिपोषण हो रही है जैसे कि व्यक्ति मर ही जायेगी। पर व्यक्ति केवल इसलिए नहीं मरने वाली है कि समष्टि का आधार बही है। व्यक्ति के न रहने से समाज नहीं रहेगा। अतः हम सामाजिक जीवन के प्रति कितने भी जागरूक क्यों न हों जब व्यक्ति का आधाररूप कमजोर होया तो समाज कभी निष्कर्षक हो ही नहीं सकता।

आचार्य तुमसी का धान्दोलन समाज के नारे न कुसन्ध करके समाज की इकाई के मोक्ष में लया है। कहना चाहिए समाज के पुनरुद्धार का मही एकमात्र सही मार्ग है।

इस युग में जबकि सारा जगत् परस्पर ईर्ष्या द्वेष बैमनस्य और हिंसा में जसा जा रहा है समाज के हर सदस्य के लिए आवश्यक है कि वह अपना कर्तव्य अपना धर्म और अपना कर्म-यत्न पहचाने और मानव-जाति को जीवित रखने के लिए कोई ऐसा काम न करे जिससे हम दुःखान्ति में प्राप्ति पड़े। इसके लिए निश्चय ही क्रोध द्वेष राग आदि को नमस्कार करना होना और बहुत सहिष्णुता से दूसरे के विचारों को समझकर 'तह' देना सीखना होना उसका धम्मास करना होना और उसे कार्यरूप में परिणत करना होना।

जीन की एक कथा है कि एक राजमन्त्री का परिवार बहुत बड़ा था और उसके परिवार के सभी व्यक्ति बड़े प्रेमपूर्वक रहते थे। जब वह राजमन्त्री प्रति बुझा हो गया और उसकी मृत्यु के दिन निकट धाये तो एक दिन राजा ने पूछा— आठिन इतने बड़े परिवार में इतना सौहार्द तुमने कैसे बनाये रखा? सपीर प्रति बर्बर होन के कारण राजमन्त्री कुछ मोस न सका। उसने कामज पर

एक सज्ज निष्ठ बिया— सङ्घियुता' ।

पर-मल के विचारों को समझने की बच्चा करना और उसे किसी प्रकार टेल न पहुँचाने वाले इसकी बच्चा करना बस्तुतः दो ऐसे गुण हैं कि यदि कहीं धर्म्यास हो जाये तो फिर अनुपम बेवता हो जाये । कुटान घरीक में एक बमह परमात्मा की उक्ति आई है—'यदि मैं चाहता कि सब एक ही मताबसम्बी हों तो मैं दूम्मे मठ पैदा ही न करता । इस नाना-कपिणी मामा-विचारमारिणी दुनिया का बुनियापन ही मामाल म है और इस नानाल में धर्मिक से धर्मिक सम्बन्ध बढ़ कर धर्मों को उम 'धूम' में बीठा सेना ही मानव-बुद्धि धर्मका मानव धर्म का सबसे बड़ा गुण है ।

बहु गुण धर्म्यास ने ही सम्भव है धर्म्यास-संस्कृत स ही सम्भव है, संस्कृत विचार से ही सम्भव है और आचार्य तुमसी विचार और संस्कृत तक अंगुली पकड़ कर व्यक्ति को समाज के विद्यालय प्रायोग तक पहुँचाने का जो प्रयास कर रहे हैं उसकी बितनी भी प्रशंसा की जाये बीबी है । नरसी भक्त का "बीप्युव जन तो तने कहिये के पीड़ पराई जागै रे" बीड़ पराई जानना ही बस्तुतः और बीड़ों की महिमा है और बस्तुतः बही गुण समातन-बैधिक धर्मियों के धर्म का मरुदण्ड है ।

बही मेहुस्नी का पंचमील है जिस पर भारत की परराष्ट्र नीति आधारित है और बही मांभीजी का जीवन-दर्शन या जिसे धाव हम मांभीवाद कहते हैं ।

आचार्य तुमसी के प्रत्यक्ष को मैं व्यक्ति के समाज के प्रति व्यवहार का व्याकरण मानता हूँ । हार नाम के इस मरुदण्ड घरीक के लिए नहीं कहा जा सकता कि क्या बन पड़ेगा और क्या नहीं पर बेप्या स्वयं ऐसी ही है कि यदि कुछ सम्भव म था जाये और व्यवहार हो जाये तो मानव बोध का उद्धार हो जाये । दिन मुह होय न ज्ञान आचार्य तुमसी आचार्य हैं—बुद्ध हैं । नयवान् करे उनके आशीर्वाद और पथ-प्रदर्शन ने यह नराधम जी दो ही बार कथम सही कार्य पर चलने में समर्थ हो जाय ।

भान्वात्मन की आवश्यकता

—धी धीपीताब समय

अभ्यस्त—अम सम्पक समिति विरला

अणुवत-भान्वात्मन की आवश्यकता क्या है यह प्रश्न अक्सर पूछा जाता है। जिन क्रुद्धियों और बुद्धिबहार को दूर करने के लिए अणुवत भान्वात्मन अपनाया गया उनसे तो कोई इन्कार नहीं करता परन्तु कभी-कभी यह कहा जाता है कि धीर भी संस्थाएं तो काम कर रही हैं इस संस्था के असम चलाने की क्या आवश्यकता है ? इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि देश में बहुत-सी अन्धी-अन्धी संस्थाएं चल रही हैं और उनका प्रभाव भी है। इसलिए यह प्रश्न गम्भीर हो जाता है कि अणुवत-भान्वात्मन अपना काम अलग क्यों बनाये ? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले इस भान्वात्मन की रूपरेखा बता देना बहुत आवश्यक है। यह भान्वात्मन राजनैतिक नहीं बल्कि नैतिक है और इसे नैतिक कहते समय भी एक बात पर ध्यान रखना चाहिए कि इसकी वृत्ति अन्तरंगमुष्ठी है। आत्म-सुधार के द्वारा जगत्-सुधार इसका लक्ष्य है। अणुवत के लिए आत्म-विस्तार और आत्म-निरीक्षण अति आवश्यक है। इसलिए राजनैतिक संस्थाओं में और इसमें तो मुख्य भेद यह है कि राजनैतिक संस्थाएं बहिरंग मुष्ठी होती हैं। शक्ति का बढ़ाना छाया का बढ़ाना है और अपने प्रभुत्व को बढ़ाना उनका मुख्य लक्ष्य होता है। इसीलिए राजनैतिक पार्टियां पक्षपात बहुत करती हैं। अपना बुरा आदमी हो तो भी उसका साथ दो दूसरे पक्ष का मनुष्य जाहे अन्धा भी हो परन्तु उसे बुरा कहो। यह सब राजनैतिक पार्टियां करती हैं, बल्कि उनको करना पड़ता है।

अब इन पार्टियों को जो जो राजनैतिक नहीं आत्मिक है। सब अपने-अपने धर्म को धेष्ठ बताते हैं और धर्म अब सम्प्रदाय का रूप धारण कर लेता है

तो हममें भी परापात्र शुरू हो जाता है। इसलिए उन संस्थाओं की धीर प्रयुक्त-
 आन्दोलन में भी एक मौलिक भ्रम है। धर्म में देश की उत संस्था को सेता
 है जिसमें महात्मा गांधी के सबसे अधिक धीर सबसे बड़े अनुयायी पाये जाते हैं,
 यानी भूदान की संस्था जिसकी बागडोर भाषाय विनोबा भावे जैसे तपस्वी के
 हाथ में है। इस समय इस संस्था का अधिकतर धीर धान पर है। भूदान
 सम्पत्तिशास्त्र धर्मदान धीर धामशास्त्र इत्यादि सब धानशास्त्र नहीं हैं, परन्तु धानु
 धर्म धान पर नहीं बल्कि त्वाय पर जोर दिया जाता है। यह एक बारीक-
 सा भेद है, फिर भी भेद है अन्तर। हमारे देश में एक संस्था भारत सेवा
 समाज भी है। इसका नाम रचनात्मक है परन्तु बहिरंगमुक्ती है। इन सब
 संस्थाओं के कार्यक्रम धीर सक्षम पर विचार करने के बाद धर्मधरत-आन्दोलन
 की धारण्यता प्रतीत होती है।

यों तो राज्य-व्यवस्था भी नैतिकता रखने के लिए ही है परन्तु कानून के
 परिधि को नैतिकता कायम होती है उसकी जड़ें बहुत मजबूत नहीं होती। हर
 धामन समाज की कमजोरियों पर स्थापित होगा है। धारण्य समाज तो धामनहीन
 ही हो सकता है परन्तु यह विषय धीर है। मुझे तो कहना यह है कि जिस
 समाज को धामन की धारण्यता न हो वह धारण्य समाज ही हो सकता है धीर
 धारण्य समाज का धारण्य धारण्य व्यक्ति की कल्पना पर धारण्य है। इस
 हिमाय से धर्मधरत-आन्दोलन धीर सर्वोदय समाज का मूल धारण्य एक ही है।

मुझे दुःख है कि इस धामनोत्थान का विरोध करने वाले भी मौजूद हैं धीर
 उम्होंने बहुत तीव्र धारण्य में धामनोत्थान की है। कोई धर्मधरती धारण्य से धीर जाये
 यह तो हो सकता है परन्तु इससे धर्मधरत-आन्दोलन पर क्या शोषारोपण हो
 सकता है? धर्म समाज के सब व्यक्ति त्वाय भावना नहीं रखते इसमें धर्म
 मित्रान्तों का क्या दोष? हिन्दू धर्म धामनस्यमय जीवन विधायों तो इनमें धीर
 का क्या कर्तव्य? धर्मधरत समाजता के सिद्धांतों से धीर जाई तो इसधामन का
 क्या धुना? बड़े-बड़े राजनैतिक दल जिस धारण्य पर धामन हैं, उनके धामने
 वाले लक्षके सब उन धारण्यों पर कहीं धर्म पाते हैं? सिद्धांत रूप से धर्मधरत
 धामनोत्थान एक धर्मधरतक धामन धा धीरक है। धर्म कोई इसकी सब

प्रतिज्ञाएं न ले सके तो बोझी प्रतिज्ञाएं भी ली जा सकती हैं। बिछापियों के लिए इतना बहुत है कि वह यह पाँच प्रतिज्ञाएं लें कि गरज न पियेगे अपने बिबाह में करारवाक न होने देंगे, हिंसात्मक काम न करेंगे और नकल न करेंगे। व्यापारी रिश्तत न देने और ईमानदारी से सौदा करने पुरे नापतोल और सखती मास देने की प्रतिज्ञाएं लें। सरकारी कर्मचारी रिश्तत न सेने और बुद्धिपूर्वक काम करने की प्रतिज्ञाएं कर लें और मजदूर अपने हितों के लिए प्रयत्न करते हुए भी पूरी मेहनत करने का प्रण कर लें तो हमारा देश बहुत ऊंचा उठ सकता है।



व्यक्ति का पूर्ण विकास और सामाजिक उन्नति

—डा० रविशंकर वर्मा

“शुद्ध चित्त और शुद्ध जीवन शक्तों को परमेश्वर अपना हाथ देकर उठाता है। आत्मा का समाधान शब्दों से नहीं होता।”¹ प्रायः कहा जाता है कि यह प्रचार का युग है। प्रकाशन सम्भाषण विज्ञप्ति आदि उसके अनिवार्य घंघ हैं। विज्ञानी पुस्तकें पत्रिकाएँ आदि प्रकाशित होती हैं, उतनी छापर कमी नहीं होती थी। लेकिन यह कहना कि उससे मनुष्य का जीवन कुछ बना है उसको अधिक ज्ञान हासिल हुआ है, उसकी बुद्धि अधिक मेधावी बनी है, मानसिक पुर्यों का अधिक विकास हुआ है—आत्मबर्चनमा करना ही होगा। इतना असंभव स्वार्थी क्रूर, घस्त्रिक, अथवा मयपुस्त मानव कमी का यह कह नहीं सकते। भाषा में ऊपर के क्षेत्र में बहर यह ‘सम्भ’ जैसा बीजता है। जानकायी-संग्रह का नाम विद्वता नहीं है। तात्त्विक नुयलता समय बात है और चिलित होना अक्षय। तो क्या भाषा साहित्य का उपयोग ही छोड़ दिया जाये? तब तो बिलकुल पमुबद् स्थिति में मानव-मभाव जना जायेगा। जैसा प्रस्ताव नहीं है। पमुष्यों की भाषा नहीं होती। हमारे पास भाषा है। लेकिन उसका इहेस्य क्या होना चाहिए, यह स्पष्ट सामने रखना है। बिना शर्तों के सिखाना और बिना कुछ किये दूसरों के उपयोग में आना सबको नहीं सधता²।

1 Many words do not satisfy the soul, but a good life comforteth the mind and pure conscience giveth great assenance in the sight of God.

2. To teach without words and to be useful without action few among men are capable of this.

इस विज्ञान के गुण ने हिंसक जिनासकारी प्रस्थाओं का निर्माण किया है। उनकी प्रक्रिया बृहत् से बृहत्तर, बृहत्तम की ओर खड़ी है। छोटी हिंसा से म नहीं हुआ तो बड़ी हिंसा का सहारा लिया जाता है। अहिंसा का भी एक ज्ञान है। उसमें भी खोजें होती खड़ी हैं। उसके भी प्रयोग हुए हैं। उन सबकी नवीन करना प्रायः मानवता-प्रेमियों का परम पुनीत एवं प्रावर्त्यक कर्तव्य है। मूदान-यज्ञ उसीका एक प्रयोग है। उससे अहिंसा का शासन बन रहा है। उस विचार की बुनियाद पर वह सब है वह एक सत्य विचार है। हर मनुष्य में एक ही आत्मा है और वह अभिन्न है। सारा मानव-समाज एक है और हम सबका जीवन भी अभिन्न है। उसमें जाति के बर्म के कर्म के ब धन भेद खड़े करना गलत है।

विचार का उद्गम हमारा मस्तिष्क होता है। उसकी अनुभूति का स्वतन्त्र माया हृदय है। विचार की ज्ञानबीन की कसौटी सत्य ही होना चाहिए और उसकी प्राप्ति अर्थात् जीवन में अनुभूति हृदयपूर्वक होनी चाहिए। प्रम ही कसौटी सत्य को जीवन में लाने का माध्यम हो सकता है। मनुष्य की यह दोनों शक्तियाँ मस्तिष्क और हृदय सिक्के के जो पहलू की तरह एक ही हैं। तीसरी शक्ति इन्द्रियों की होती है। शरीर का उपयोग भी शक्ति का साधन बनता है। तीनों शक्तियाँ मेरी हैं जहाँ इसका मान है और स्वीकार्य है जहाँ जो शक्ति उत्पन्न होती है, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। आत्मत्व का बिभेदण करना हमारी बुद्धि के परे की बात है लेकिन उसकी सली का अभ्यास और अनुभव बहुतों ने किया है। हर मनुष्य के अन्दर बुराई के बल टोकने वाला और अशुद्ध के बल धारण आस्वादन प्रवृत्त धारणा देने वाला कोई बैठा है यह कौन नहीं कहेगा ? इस यज्ञ के निमित्त मनुष्यों की इन चारों शक्तियों का प्रवर्धन हो रहा है। नैतिक तत्त्वों को भी नैतिक और आत्मिक मूर्खों पर ले जाना अहिंसा की खास खूबी होती है। हमारे प्रायः के जीवन में जो परारें पड़ी हैं—गरीब-अमीर, सासक-सासित घोषक-घोषित बुद्धिजीवी-अमज्जीवी इत्यादि—वे गलत हैं, अनात्मिक हैं अनैतिक हैं। हिंसा की ओर से जाने वाली हैं। मनुष्य को अधिक स्वार्थी, क्रूर, पापी प्रमादी तथा दम्य बनाने वाली हैं।

इनमें किसी को भी शान्ति समाधान मुझ नहीं मिल सकता। व्यर्थ ही मानवीय-सक्ति का दुरुपयोग घोर हुआ होता जायेगा। उसके सख्त स्वरूप का दर्शन घोर उसके प्रपूर्व गुणों की शक्ति का लोप ही होता जाता जायेगा। बाहर से धात्र जो दुर्म्यबस्ता हिंसा धन्याय धत्वाचार, शोषण दीखता है उसका उपाय निकाले बिना मनुष्य घोर समाज गुली नहीं हो सकते।

परिस्थितियों का परिणाम मनुष्य पर पड़ता है। धनुष्यत परिस्थितियों में वह विकास कर सकता है, प्रतिभूतता में उसके विकास में बाधाएं आती हैं। धात्र यह बात तो बहुतों के ध्यान में आती है कि मनुष्य नहीं बिराड़ा है परिस्थितियां बिगड़ी हैं। इसलिए परिस्थितियों को बदलने की हुर कोशिश पर और दिया जाता है। हमारा भी विश्वास मनुष्य के अध्येतन में है। लेकिन हम यह ऊबून नहीं करते कि मनुष्य में वैचल्य प्रकटियां ही हैं। बुरे भाव भी हमारे में रहते हैं। इसलिए धात्रस्यकता इस बात झी है कि मनुष्य की प्रकटियां को प्रकट किया जाये। उनका उपयोग ही घोर उसके धनुष्यत परिस्थिति बने। अब यह हो कैसे? जाहिर है बोहरी प्रक्रिया से होगा। मनुष्य को भी उनकी बुराईयों से छुड़ाने का बल देना होगा घोर समाज में भी धनुष्यतता लानी होगी। विश्वास-परिवर्तन हृदय-परिवर्तन समाज-परिवर्तन जीवन-परिवर्तन इस तरह इसका क्रम है।

भारत में धात्र महापुरुषों ने सत्य की लोभ में धहिमा की उपासना में अपने जीवन समर्पित किये। सारे समाज को उनके उन प्रयोगों ने धनुष्यत किया। यदि धात्र भी कोई महापुरुष इन तर्कों का सहारा लेकर कदम बढ़ाता हुआ धात्रे चला आ रहा है तो कौन-सी नवीन बात है? नवीनता कार्यक्रमों में होती है। समाज के सामने जो धात्रे उपस्थित होता है उसको प्राप्त करने के लिए धात्र जो कार्यक्रम बैठे हैं उसीमें धात्र की बसौटी होती है। धुवान-यत्र बीजा ही एक कार्यक्रम है जिसमें मानवताप्रिय सत्य के उपासकों घोर धहिमा के पुजारियों की बसौटी होगी। हमारा जल-स्रोतपन हमी पर कसकर प्रकट होने वाला है। हमारे विश्वास की पहचान को नापने का मापक ही यह धुवान बनने वाला है।

मनुष्य में कुछ गुण जन्मजात होते हैं और कुछ वह कमाता (Acquire) है। उसका भी कोई नियम नहीं हो सकता। अपना-अपना परीक्षण करके सबको ठय करना होता है। मिसाल के तौर पर माँबीजी में ग्रहिया जन्मजात थी। यानी उनके जीवन व स्वभाव में वह सहजता से एकदम हो गई थी। ब्रह्मचर्य के लिए उन्होंने कठिन परिश्रम किया था वह उनकी कमाई हुई निधि थी। इस तरह अपने-अपने अन्तःकरण को टटोलना होता है गुण-विकास के लिए। गुण धात्मा के और दुर्गुण अधीर के ऐसे भी भेद किये जाते हैं। इस पर से इतना स्पष्ट है कि गुण विकास बिना धारम-वसत असम्भव है। धारम-वर्तन के सामने कोई दुर्गुण नहीं टिकता। अणुघट को भी मैं उसी यात्रा का एक छावन एक रास्ता मानता हूँ। सकल्प दो मनुष्य को बड़े ही करने चाहिए। उनको हासिल करने के लिए अपनी-अपनी सुविधा सामर्थ्य और वृत्ति के अनुसार उपाय अन्वित्यार करना पड़ते हैं। उद्दिष्ट संकल्प और उनको हासिल करने के उपायों में बिरोध न हुआ तो एक दिन वे प्राप्त भी हो सकेंगे। कमी-कमी बँसा भी भास हो सकता है कि एक मनुष्य या सत्य समझता है बूझने के लिए वह असत्य समझ आये। जो हमारे लिए अग्रतय हो वह दूसरों के लिए सत्य हो। लेकिन मेरे लिए क्या सत्य है यह मैं जान सकता हूँ। दूसरों के कारण मूस हो सकती है लेकिन उसमें यदि र्भय ईमानदारी और निष्ठा के साथ बढ़न होता गया तो भ्रम नहीं होगा।

अणुघट में उद्दम्न छोटा नहीं है ममे ही उसको हासिल करने के उपाय छोटे-छोटे हों। अन्तर मनुष्य-स्वभाव में कुछ बातों के लिए अधिक महत्त्व होता है और कुछ के लिए कम या नगण्य। सिद्ध भोगों की बात हम नहीं करते लेकिन जो सामक हैं, उनको तो छोटी से छोटी प्रवृत्ति व संस्कार की धोर बड़ी सावधानी से देखना होगा उसके मुबार की कोधिच कमी होनी। हम लोगों के रोज के जीवन में न माकूम कितने अर्थ के संस्कार हमारी हमार भर बासों की एवं साधियों की असावधानी के कारण पतपठे रहते हैं। उन पर रोक लपाने का प्रारम्भ होना चाहिए। भीनी बाधनिक ने ठीक ही मिसा है—
 “अरिबवान् पुत्र्य का जीवन सरल होता है, फिर भी अनाकर्षक नहीं होता।

बहु सादा होता है फिर भी उसमें एक साज होती है। बहु स्पष्ट होता है फिर भी उसमें सम्तुलन होता है। बहु जानता है कि महान् कार्यों की सिद्धि का रहस्य छोटे कार्यों को धन्य ही तरह करने में होता है।¹

भारतवर्ष में अनेक महर्षियों ने अपने ढंग से धार्मोन्नति के लिए साधनाएँ की हैं। प्राचीन काल में बहु एक परम्परा ही बीसती है—अपि मुनियों की। उन्हीं से ऊँचा अध्यात्म-वर्धन उनके पितृण में से प्रकट हुआ धार्म धोर उन निपट निकले। जिनका बहुत गहरा असर आज इस देश के रहने वालों पर है। दूसरा बड़ा असर उन समाज-नेताओं का हम पर है जिन्होंने समाज की व्यवस्था समाज की रचना उसमें पाये जाने वाले धनुषत प्रतिकूल विभिन्न तरह मनीषात्मिक तरह धार्मि का विस्तार किया जिसकी मिशाल अनेक बार्दों के रूप में आज हमारे सामने है। बुनिया का कोई हिस्सा इनके असर से धाँसा नहीं है। पूँजीवाद समाजवाद साम्यवाद जनतन्त्र धार्मि के प्रयोग आज सर्वत्र हो रहे हैं। हमारे देश में भी उनका असर है। पारधाय सम्पत्ता के साथ बहु धाया। सौभाग्यवश इस देश में एक ऐसा पुरप पैदा हुआ जिसमें इन बीनों का धनुषत समन्वय सबा। गाँधीजी की देश को यदि कोई बड़ी देन थी तो बहु यह थी कि व्यक्तिगत उन्नति समाज के साथ (Individual progress in relation to Society) अनता ही उनका हिमासय बन गई, सेवा ही साधना बन गई। धार्म भी जिस बीज की हमको अरुणत है बहु यही कि हम व्यक्ति धोर समाज को धर्मिण मान कर चलें। व्यक्ति का धर्मन व्यक्तित्व भी कायम रहे धोर समाज के लिए ही बहु धिये। अध्यात्म धोर व्यवहार में अन्तर कम हो विरोधाभास फर्क न हो। दुःख व्यवहार ही सच्चा अध्यात्म बन पाये। मन्दिर धोर दुकान का विरोध मिट बाये।

1 The life of the moral man is plain and yet not unattractive it is simple and yet full of grace it is easy and yet methodical. He knows that the accomplishment of great things consists in doing little things well.

सुधारवाद और समाज-परिवर्तन

अब हम मुख्य प्रश्न पर आते हैं। ऊपर भूमिका की दृष्टि से उत्थित-व्यक्तित्व कर लिया। अपने देश में सुधारवादियों की कमी नहीं रही। लोगों को अच्छी बातें सिखाने का काम हर समय इस देश में रहे हैं। पापों का नाश करने के लिए अनेक यज्ञ यहाँ के लोग अपने-अपने पुरोहितों से कराते रहते हैं। पाप की गूँसना ही टूट जाये सारा जीवन पुण्यमय बन जाये बँसा कम होता गया है। इस देश में धर्म को भी अल्प से अल्प पाप का साधन बनाने की नीयत आज पाई है। ठीक वही वसा राष्ट्र के समय खीसती है। जब कोई वर्ग या प्रदेश अकाल बाढ़ भूकम्प या रोग से ग्रस्त होता है तो तुरन्त सन्नद्ध ध्यान उनकी मदद करने की ओर जाता है। अमह-अमह सहायता शिविर (Relief Camps) खुल पड़ते हैं। कल्याण गुण उत्तम है, लेकिन रज्ज के बर्तों पर उतर कर बयनीय ही बन जाता है। यह नहीं सोचा जाता कि बेसी मुमीयत की बड़ कहीं है? उसी का इलाज क्यों न किया जाये? बान धर्म अच्छी बातें हैं, लेकिन केवल राष्ट्र और सुधार तक सीमित रहकर गिन्तमे ही नहीं बगते उस्टे समाज क विकास में बाधक भी बनते हैं। धमीर से आपने क्या-धर्म के नाम पर थोड़ा दान करा लिया तो गरीब को थोड़ी मदद तो मिल जाती है और धमीर को यद्य और समा-बान भी मिल जाता है, लेकिन उससे आप उसके परिग्रह का स्वीकृति भी देते हैं और उसके संग्रह करने के सब नाजामक अनेधिक व धोषणजन्य उपायों को भी सहन करते हैं। पर यदि यही बान इस बात में बदल दिया जाये कि आज थोड़ा देना है देना सभी है क्योंकि यह समाज का ही है, सबको सबमें बाँटकर खाना है, 'दानं सम विमान'—तो धमीरी गरीबी का भेद मिटान की दिशा में यह एक कदम होता है जो सारे मूर्खों को, समाज को व्यक्ति को बदल देने की शक्ति रखता है। इसीका नाम धार्मिक सामाजिक शक्ति हुआ।

साम्यवादी लोगों का कहना है कि ये सुधारवादी लोग धर्म का नाम लेकर गरीबों के काम में थोड़ा डालते रहते हैं। इनके कार्यों से शक्ति लुपती है। इसमें काशी सरपाय है। सुधारवादी भूष गया से इतिवृत्त होते हैं। पीछी को भी भाव-शक्कर सिमाने तक का कार्यक्रम इसीलिए सठाते हैं पर मानवीय समस्याओं

की कहवाई में नहीं जाते, समाज की समस्याओं की जड़ तक नहीं जाते। वो भी बीड़ा-बहुत सेवा का काम हो जाये। उसीमें समाधान मान लेते हैं। मैं इसे कठोरताक तो नहीं कहता। कुछ न कुछ तो परोपकार होता ही है। लेकिन इतना लेकर कहना चाहता हूँ कि इससे व्यक्ति-विकास और समाज-विकास दोनों पूर्णता की दिशा में बहुत अधिक नहीं जा पाते। प्रथम तो धनाय-भाबना बड़ी क्लेशदायक बनती है। यश की साक्षरता में परोपकार होता है। दूसरे समाज में सबसे त्याग की कृति नहीं पनपती। निष्काम-कृति से समाज की सेवा और धरने लिए कम से कम लेने की त्याग-कृति बिना मनुष्य का विकास सम्भव है। समाज भी तब तक धाये नहीं बढ़ेगा जब तक कि धारणी स्वार्थ कायम रह्ये। धाज बहुत बड़ी बकरत इस बात की है कि जिन गुणों का विकास हम व्यक्ति के लिए जरूरी मानते हैं, बड़े ध्यापक स्वल्प में समाज भी उसे कबूल करे और यह नहीं होगा जब तक कि हम सबके स्वार्थ एक नहीं होते हैं।

धाज तो चारों धीर सत्ता है, सोपण है, विपमता है, स्वर्ण है। एक दूसरे की धेब से धेबे धेरी धेब में कैसे धा जायें। इसी की तासीम सर्वत्र सीखने की कोशिश में मनुष्य है। मुट्टी भर सोग दूसरों पर धासन करते रहें। इसीकी योजनाएं सर्वत्र बनती रहती हैं। गरीबी बेकारी मिटने के बजाम भयकर बनती धा रही है। एक दूसरे की हीड़ ही लगी है। कोहनी से पकेज कर भी हर एक धाये बड़न की कोशिश में लगा है। यह सब कैसे मिटे ? धार समाज एक धर कैसे बने ? जहाँ स्पर्धा की जगह सहयोग हो सत्ता की जगह मार्गदर्शन हो, सब समान हों और कोई किसी के सोपण की योजना न बनाना हो। बाहिर है यह उसी नियम के धापार पर हो सक्ता है, वो धर को टिकाये रहता है। धर में प्रेम का सूब ही एक पैसा मजबूत माध्यम होता है जो सबको एकल्प बनाये रखता है। उसीसे बहाँ दूसरे धारे सद्गुण संस्कार पनप सक्ते हैं। भारतीय समाज रचना की ईट परिवार-संयोजन है। यह संस्था हमारी संस्कृति जितनी ही प्राचीन है। इसलिये धर के ध्याय को हम बखूबी जानते हैं। लेकिन उसी ध्याय को धर से बाहर नहीं लाए करते। यह धरे इसी जड़य से पूज्य विनोबाजी ने भूगण-यज्ञ का कार्यधम धेध को धिया है। इसमें प्रेम का कण्ठा का धरिणा

का केवल व्यक्तिगत पहलू ही नहीं है बल्कि पूरे समाज को अनुप्राणित करने की शक्ति निहित है। पिछले पांच वर्षों में हमने देखा कि जिस जमीन से लोग इतन थिपके रहते थे कि मार्ल-मार्ल में सिरफुट्याई होती थी वही जमीन आज बिनोवा ने हवा पानी सूर्य की रोशनी की तरह बहा दी है। लोगों के दिमागों में बड़ा भारी परिवर्तन आया है। बूझों का भी हक है। पूरे गांव को एक होकर उन्नति करनी है। अपनी व्यवस्था अपनी योजना अपना कारोबार बढ़ा करना है तभी स्वयम्भू प्राप्त होगा।

इस देश में बहुत सारे सज्जन भाव भी मौजूद हैं। कुर्बन भी हैं। सज्जनों की सज्जनता को सक्रिय होना पड़ेगा और संयुक्त भी। यों देश में अनेकों संयुक्त हैं, पक्ष-विपक्ष हैं लेकिन सज्जनों का कुर्बनों का ऐसा कोई संयुक्त नहीं है बड़ी सम्भावना भी नहीं है। लेकिन यह हो सकता है कि राष्ट्रीय पैमाने पर कुछ कार्यक्रम ऐसे हो सकते हैं, जिनमें देश की अक्षी शक्तियाँ एक राय होकर सक्रिय रूप से जुट सकती हैं। हमारी दृष्टि में भूदान एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसमें सज्जनता को सक्रिय और संयुक्त होने का पूरा अवसर मिलता है। यदि यह हुआ तो बहुत जल्दी देश की गरीबी बेकारी और मुसीबतें दूर हो सकती हैं। मानव मान की बिस्व-कमल की ज्वाला से रखा हो सकती है। मुझे माझूम नहीं 'अनुभव' में संतप्त भाइयों में से कितने इस बात से सहमत होंगे और कितने सक्रिय। जैसे ही भूदान-यज्ञ में संतप्त कार्यकर्ता अनुभव की ओर शक्ति है उसका उपयोग कितना करते होंगे सो भी कहना कठिन है। दोनों एक-दूसरे, एक-दूसरे होकर आये बड़ें तो दोनों का उत्सव सफल होगा। परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि वह हमें जैसा बना दे।



नतिकता की घोर महान् कब्र

—धी माईरयाम जीव, धी० ए०, धी० टी०

धार्मिक युग को बड़े पैमाने पर बतने वाले उद्योगों और नये-नये रिक्तियों का युग कहा जाता है। एक-एक उद्योगपति यानी मिल मालिक बीसियों मिशनों की श्रद्धा का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से स्वामी है और उसके नीचे बीस-तीस हजार तक कर्मचारी और लौकर काम करते हैं। उन मिशनों में बतने वाली चीजों की संख्या लाखों और करोड़ों तक होती है और बचन भी हजारों और लाखों मन तक पहुंच जाता है। इसी प्रकार नैतिक पतन भी इस युग में व्यक्तिगत सामूहिक या सरकारी रूप से बड़े पैमाने पर ही रहा है। इस नैतिक पतन को हिंसा भूट चोरी मंग्रुण और परिग्रह के पांच बड़े भेदों में बांटा गया है। सघार भर में होने वाले सभी छोटे-बड़े बुरे काम इनकी गिनती में आ जाते हैं। एटम बम तथा हाइड्रोजन बम से लाखों भावमियों को मार देने से लेकर और किसी को मारी लेकर उलका मग दुलाना भी हिंसा है। सरकारी बुटनीति से लेकर घर या दुकान पर बोसा जानेवाला छोटे से छोटा भूठ भी भूठ है। बड़े-बड़े रैस हकुर कर जाना इन्कमटैक्स के लाखों रूपों की चोरी कर जाना और सरकारी बफ्टर से एन कागज वा पेपिस तक लाकर निजी काम में लाना चोरी है। ब्यभिचार के बड़े-बड़े धर्दों पर होने वाले ब्यभिचार से लेकर पटाई स्त्री की घोर बुबुटि से रैसना मात्र यहाँ तक कि स्व-रभी से भी संभोग करना पशुवर्ष है। और बड़े-बड़े साम्राज्यों या उपनिवेशों का निर्माण करना और अपने घर में भग्नापुण्य काम बेकाम की वस्तुओं का संग्रह करना परिग्रह है। पहले भी इस प्रकार होने वाले पाप या धर्नैतिक कार्य कम न थे पर धर छो इमानी विमाय मिल नये-नये धर्नैतिक कार्यों का न केवल धानिकार ही कर रहा है बरन उन पर इस तरह मुलाम्मा करवा है या उनको

ऐसा रूप देता है कि कानूनी तौर से या बाहरी तौर से वे काम अनैतिक दिखाई भी नहीं देते हैं। इसको नैतिक पतन की पराकाष्ठा या चोरी घोर सीमाचोरी न कहा जाये तो घोर क्या नहूँ ?

✓ इस नैतिक पतन का फल विद्वत्तर की जनता में फैला हुआ दुःख है। इन विविध नैतिक पतनों से लोगों को कष्ट घोर दुःख है पर वे स्वयं प्रयत्न या परोक्ष रूप में इन पापों या नैतिक पतन के कामों को किसी न किसी रूप में करने या कराने के विम्वेधार हैं। हम धीरों के कामों की सिफायत करते हैं रोना रोते हैं घोर भना-बुरा कहते हैं, पर अपने कामों की घोर ध्यान नहीं देते। हमें अपनी बड़ी सं बड़ी बुराइयाँ दिखाई ही नहीं देती। अनैतिकता के इस महा सामर में आज कुछ इनेगिने व्यक्तियों को छोड़कर सभी नमि हैं। इस अनैतिकता के लिए कोई कमिमुग को दोष देता है कोई सरकार का तो कोई जनता को। कोई मन्त्रियों या शासन प्रणालियों को कोई धर्म-व्यवस्था को तो कोई सामाजिक व्यवस्था को। कोई पूंजीपतियों को तो कोई मजदूरों को घोर कोई बड़े भादमियों को तो कोई जनसाधारण को। पर सब बात तो यह है कि हम सभी दोषी हैं।

✓ इस सर्वव्यापक अनैतिकता का इलाज क्या है ? इसका इलाज घोर रोक-बाम कौन करे ? सरकार इसे कैसे रोके घोर जनता इसे बन्द कराने के लिए क्या करे ? इस गन्दगी को कौन साफ करे ? आज बिस्मी के यत्ने में पंटी बाँबने का प्रसन्न नहीं है प्रसन्न है अनैतिकता रूपी महादानव को काहूँ म करने का। सब तरफ इस अनैतिकता के विरुद्ध धाराबद्ध उठ रही हैं घोर नाहि नाहि हो रही है। अल्पकार में तो एक कुगमू की बमक यात्री को मार्ग दिखा सकती है घोर एक तारा उसका पय-श्रदसक बन सकता है। फिर यह तो बड़े ही हर्ष घोर आशा देनेवासी बात है कि धाराबद्ध श्री तुमसी न इस अनैतिकता के विरुद्ध मारत में कश्म उठाया है। न प्रकाम-न्तम्भ बनकर न सिर्फ स्वयं रास्ता ही दिखा रहे हैं बरन नेता घोर अनुया बनकर अपने संकड़ों गिप्य-साधुयों के साथ इस महा-दानव को बध में करने के लिए तैयार हुए हैं। उन्होंने इस काम को व्यवस्थित रूप से करने के लिए आयुष्य-आन्दोलन का प्रवर्तन किया है घोर न इस आन्दोलन

को अपनी देखरेख में संभारित कर रहे हैं। हर एक अणुबिंदी की बहुत सी प्रतिभाएं करनी पड़ती हैं या यों कहो कि प्रथम सेने पड़ते हैं जिनमें नये धीर पुत्रने बहुत से पापों को या अनैतिक कार्यों को न करने का संकल्प होता है। आन्दोलन कार्य के अनुभव के बाद ध्यातु सूची कार्यक्रम बनाकर जनसाधारण के लिए अणुबिंदों को धीर सुगम बना दिया है। पर पहले नियम जितने कठोर थे वे उतने ही सरल हैं। फिर भी नियमों की कठोरता के विरुद्ध कहीं-कहीं से आवाज धाई है। आज देश की प्रमुख आकाशवाणी अनैतिकता को दूर करता है। उसे नौन दूर करता है और उसे दूर करता है इन बातों की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, जितनी कि आवश्यकता इस आन्दोलन को बस तथा सहयोग देने की है। धार्मिक रूप से एक तपस्वी के नेतृत्व में जनता का यह एक बड़ा काम है। इससे भी बड़ी बात यह है कि इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए आचार्य श्री तुलसी के संकल्पों सिद्ध आज टोमियों में बंट कर देश के कोने-कोने में इस आन्दोलन का संश्लेष पहुंचा रहे हैं। कहा जाता है कि अब तक इस आन्दोलन के ३०० सदस्य बन चुके हैं। यह बड़ी अच्छी बात है ?

असुख-आन्दोलन का महत्त्व बहुत है। यह हमारे अनैतिक जीवन को पुनः करेगा। जनता को कुछ मुक्त देगा और इसके सदस्यों को प्राथमिक उन्नति के पथ पर अग्रसर करेगा। हमारा वर्तमान जीवन महान् अज्ञान अज्ञान जीवन का एक अत्यन्त छोटा-सा मार्ग है। उस जीवन के किसी भी समय में हम कभी सुधार मार्ग पर बस पड़ें तभी अन्ध है। इस आन्दोलन की तुलना मोरस रि-अमिष्ट मूवमेंट और आचार्य विनोबा भावे के भूदान-यज्ञ आन्दोलन से की जा सकती है। यह आन्दोलन अभी अपनी शिशु अवस्था में है। इसकी हर प्रकार से सहाय्य देखना और संवर्धन की आवश्यकता है। ध्यातु है कि आचार्य श्री तुलसी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के अनुशासन और देखरेख में यह आन्दोलन दिन दूनी धीर रात चौबुनी उन्नति करेगा।

परिस्थिति का तकाजा

—श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय

जब कोई सामाजिक मुण्ड घभावकम बनकर तीव्रता धारणा कर सेवा है तो उस काम में उसका भावकम ही महत्त्वपूर्ण और विधिष्ठ बन जाता है। सत्य शापरति मुर्गों में जो पुण्य सामान्य एवं जो दोष असामान्य माने जाते होंगे वे धात्र के युग में उलटे रूप में माने जाते हैं। धर्मराज का 'नरो वा कृजरो वा' भीम का 'कृटि के नीचे गदा प्रहार' धारि दोष असामान्य माने गये थे जबकि धात्र ऐसे दोष इतने सामान्य हो गये हैं कि इन्हें राजनीति समाजनीति व लोक-व्यवहार धारि में प्रतिष्ठित तक प्राप्त हो गई है। जोरी मूठ दगाबामी, भोलावेही धात्र असामान्य दोष नहीं प्रतिष्ठित दोष माने जाते हैं। उस रोज पांच धाने की कट्यक मेंहरी सस्ती जानकर जब मैंने खरीदी तो पता चला कि वह तो डेढ़ धाने पात्र की है। मैं वापस उसके पास गया तो उसने कहा 'यह तो दुकानबापी है—हम जाहे जितना मुनाफा सैं। धाप्रको बकरत हो तो खरीदो। ऐसा करना ही होता है' इत्यादि-इत्यादि। ऐसी प्रतिष्ठा धात्र धरपादि दुर्गुणों को प्राप्त हो गई है। वह तो बहुत छोटा दुकानदार वा। हर क्षेत्र एवं हर कारोवार में यही पामा जायेगा। अत्यन्त ईमानदार, ईस्वर भक्त एवं सम्जम पुरप भी जब पत्र समास में जाकर फस्ट का पैसा बिल में जोड़ता है तो वह यही मानता है—'हमने कोई महत्व काम नहीं किया है। यह तो तरीका ही है'। और बिल मंजूर करने वाले भी यह जापते ही हैं।

ऐसी स्थिति धात्र है, फिर भी यह निराध्यात्मक नहीं है क्योंकि इतने दोषों, धमगुणों धारि के बावजूद वह जन-सामान्य इनके खिलाफ ही धिकामत करता है तो मानना चाहिए कि उसके मन में नहीं तो भी एक ऐसी नीज बची है जो उसको उद्देनित करती है। खुब इनका धिदार होत हुए भी उसके खिलाफ

जब बही सिकामत करता है तो इसके मानी है उसका हार्द अभी साबित है धीर पानी पर सिर्फ गहरी काई भर घा गई है। यही हार्द उसकी सख्त विवेक-बुद्धि को जागृत करता है उसे ही परिस्थिति साचारी या मोह सख्त बुद्धि की कृष्ण बनने से है। अभी वह ऐसा निर्पूर्ण नहीं बना है, जो भीतर की इस कुमन को बॉय का साचरस माने या बॉय ही बना है। यदि आज के सख्त-फरेब धीर मूठ के भीतर हम गहराई से देखें तो पता चलेगा कि इन सबके बाबजूद जनता का 'हार्द' अभी काममें है। निश्चिन्हे वह प्रतिहार धर्म्य नहीं है, प्रभावशाली नहीं है धीर नपुंसक-सा बन गया है, लेकिन अस्तित्वहीन वह अभी नहीं हुआ है।

एक होता है ऐसा पापी जो प्रवाह में बहकर पाप करता ही जाता है धीर एसी सामता नहीं रख पाता जिससे कि वह उसका मुकाबला कर सके। डूबता होता है ऐसा पापी जिसका अन्तर भर चुका होता है धीर कोई अपटित हुए बिना वह बचस ही नहीं सकता। यद्यपि ऐसा पापी कभी बचस भी सकता है, क्योंकि वह मनुष्य है तथापि यह अपवादात्मक स्थिति है सर्वसामान्य नहीं। प्रथम प्रकार के पापी का परिवर्तन ऐसी अपवादात्मक स्थिति नहीं मानी जा सकती क्योंकि वह प्रवाह-नतित होता है तो ऐसा पापी भुंकि उसका अन्तर साबित होता है परिस्थिति में से उसे यदि कोई पवार है तो वह धीरन सही राह पर पहुंच जाता है। आज समाज की स्थिति इसी तरह की है। उसके उस साबित 'हार्द' को स्पर्श करके जो उसे बचा सकेगा वही उसका मसीहा साबित होगा। लेकिन यह केवल उपदेश या तरव-विवेचन से होने वाली चीज नहीं है।

किसी व्यक्ति के हार्द को स्पर्श करके के लिए, उसे जागृत करने के लिए सामने बाने का द्वार भी ऐसा ही प्रभावशाली होना चाहिए, जो अपने को तो बचा ही ले सामने बाने को भी मोड़ दे। इसके लिए उसके अन्तर में केवल कदवा ही होनी चाहिए धीर वह भी ऐसी कदवा जो केवल सहायुर्भूति तक ही सीमित न रहे। ऐसा व्यक्ति सामनेबाने को सहज ही मोड़ देता है यह बिनमिन पीयन का अनुभव है। अपनी तपस्या से सेवा में कष्ट-गहन से वह सामने बाने के हार्द को जागृत कर देता है एवं विचारों में उन प्रभावित भी। लेकिन यह हार्द व्यक्तिगत दोष की वस्तु। सामाजिक दोष में इतने ही प्रयत्न काय्ये

नहीं होते एक व्यक्ति ही पर्याप्त नहीं होता। इसलिए सन्त महात्मा, मसीहा इतने हुए, लेकिन प्रवाह पतित बनने की परम्परा बमती ही रही। हर समय समाज पतित बने और कोई मसीहा उसे धाकर बचा से यह परम्परा तो बसी पा रही है। अब उस परिस्थिति की चिन्ता करने की जरूरत ही क्या? 'यथा यदा हिर्षस्य ग्मानिर्भवति भारत'। हमारी मरद के लिए है ही। लेकिन उस बगाने में अब भयानक दोष व्यक्ति-व्यक्ति तक ही सीमित रहते थे एक मसीहा या एक आत्मा—महात्मा काफ़ी हो जाते थे। परन्तु अब ये दोष सामाजिक बन गये हैं तो उसका मुकाबला भी सामाजिक रूप से ही करना होगा। समाज के हार्द को बगाने के लिए समूहगत तपस्या ही करनी होगी। ऐसे समाज के मुकाबले समर्थ और प्रतिकारवाण हार्द वाला समाज ही बड़ा करता होगा। इसका धर्म है संत महात्मा या मसीहा सिर्फ एक के मन जान से ही काम नहीं चलेगा। दूसरे पक्षों में समाज पानी बने और उसका उद्धार दूसरा कोई एकलव्य व्यक्ति ही करे, इतना ही भय काफी नहीं होने वाला है। समाज को ही यह भार धरने ऊपर लेना होगा।

इसका मतलब है भय ऐसे प्रयत्न व्यक्तिगत नहीं समूहगत सामाजिक रूप से ही करने होंगे। जब हम यह कहते हैं कि समाज पाप के गर्त में है तो इसके यह मानी नहीं कि पूरा समाज पाप के गर्त में होता है। बहुजन समाज की यह स्थिति होती है। अल्पजन समाज ऐसा बच भी जाता है—यद्यपि कोई ठीक रेखा नहीं खींची जा सकती। सार यह कि भयुसंचयनत् ऐसे जन का संयम करके सम्पूर्ण समाज के हार्द को बगाने का कार्य सामूहिक प्रयत्नों द्वारा किया जाना आवश्यकतापूर्ण है जिस बहुजन समाज में हम दोष-बाहुल्य पाते हैं वह भी सम्पूर्ण दोष-निष्ठ नहीं होता। अतः सामाजिक प्रयत्नों में उसका भी सहकार सक्रिय रूप से मिल जाता है। इस तरह एक ऐसी सामाजिक प्रतिरोध शक्ति खड़ी हो सकती है जो सम्पूर्ण समाज को मोड़ दे। निःसन्देह उसके लिए आभार है बुनियाद है—तपस्या और सेवा ही जो समाज के हार्द को सक्रिय कर सके। ऐसे समूह का इसकी दीक्षा व्यक्तिगत प्रयत्नों के द्वारा देकर एक सामाजिक शक्ति खड़ी की जा सकती है।

इस विवेचन के प्रकाश में धर्म जैन परिवाजकों की संस्था की समूह-धर्म का उपयोग एवं महत्त्व सहज दृष्टिगोचर हो सकता है। धर्म साधु, सत्य या महत्त्वपूर्णों में धर्म जैन भूठ धारि का ही बोलबाला है। लेकिन जब भी हुआ मानना है कि जैन परिवाजक साधु-साम्प्रियों में धर्म जैन भूठ का ऐसा सामाजिक प्रभाव धर्म नहीं हुआ है। यद्यपि इतिहास का प्राबल्य उनमें है और वह उनके विकास में एवं धर्म में बहुत बाधक है फिर भी उनकी धर्मिक धर्मिक रूप में संगठित रूप में काम में सारी जाये तो वह प्रभावशाली बन सकती है, ऐसा हम मानते हैं। इसका हमें धर्म संकेत ही नहीं करना था। हमें कहना यह है कि ऐसे सामाजिक प्रयत्नों में जैन समाज किस प्रकार योग दे सकता है यह वह पहचान से। उसका प्रबल प्रभाव धर्म उस समाज पर है। ऐसी समाजों को ऐसे परिवाजक प्रेरित करते रहें तो सामूहिक प्रयत्नों में वृद्धि हो सकती है। लेकिन इसके लिए मूलमूल परिवर्तन दृष्टिकोण कार्य एवं पद्धति धर्म में करना होगा केवल धर्मोपदेश एवं इतिहास से काम नहीं लेना।

ऐसे सामाजिक प्रयत्नों की आवश्यकता एवं उपयोगिता के बीच जब हम धरुवत-धर्मोपदेश को देखते हैं तो बहुत धारणा बन जाती है क्योंकि जैन साधुओं की संस्कृत परम्परा में से निकली हुई यह धर्म जैन समाज तक ही धर्म को सीमित न करके, धर्म विधेय तक ही धर्म को न बाधकर जो धर्म इस धर्मोपदेश में उद्दिष्ट है, वह धर्म की प्रगतिशीलता एवं उपयोगिता को ही प्रकट करता है। यह प्रगति यही तक न बढ़कर भीतर पड़ी हुई इतिहास का भी प्रतिरोध धर्म कर रही तो उसकी वैजस्यता में वृद्धि ही होगी।

देश सर्वतोऽंगु मूर्ती— धर्म धर्म में विरति 'धरुवत' एवं धर्म में विरति 'महाधर्म' है धर्म हिमादि धर्मों से मन धर्म काया द्वारा हर धर्म से धर्म धर्म— यह हिमा धर्मोपदेश ही महाधर्म है और 'जाहे धर्मोपदेश जो धर्म धर्म में धर्म धर्म— ऐसा हिमा धर्मोपदेश धरुवत धरुवत है। यह है धर्म-धर्म-धर्म। धर्म धर्म को धर्म धरुवत धर्म धर्म है। धरुवत यह धर्म धर्म धर्म के ही धर्म धर्म है। धर्म धर्म के धर्म, धर्म, धर्म धर्म की धर्म धर्म हो सकती धर्म धर्म धर्म-धर्म में धर्म धर्म धर्म धर्म धर्म है। धर्म धर्म

हार लक्ष्य ग्रहण कर धरुप्रसन्न-भ्रान्त्वोन्नत ने मध्यम मार्ग ग्रहण करके समय-सूचकता ही दिखाई है। जब दोष सर्व-सामान्य एवं गुरु प्रसामान्य बन जाते हैं तब ऐसा ही मध्यम मार्ग कामयाब हो सकता है। इस दृष्टि से धरुप्रसन्न-भ्रान्त्वोन्नत सामयिक व्यावहारिक एवं संरक्षक भ्रान्त्वोन्नत है। इसीलिए उसने इतनी लोक-प्रियता भी बरख करली है। समय की पुकार की प्रतिध्वनि उसमें दृष्टिगोचर हुई, यह स्पष्ट ही है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है इसने जैनेतरों में प्रवेश करके प्रगति की सीढ़ी नापी है उसी तरह क्रमशः भागे बढ़कर कृषिवाद पर भी कठोर प्रहार उसके द्वारा हुआ उसकी व्यापकता एवं गहराई के लिए अनिवार्य है। जाति, वर्ण सम्प्रदाय वर्ण यत्न देश के दम्बनों से रहित होकर पराक्रम करने की उसकी क्षमता तभी धार्मिक प्रभावशाली हो सकती है।

लेकिन यह तो हुआ उसका जीवनामृत पर ध्यान चयाच में पड़ी हुई सर्व साधारण दोष-प्रवृत्ति को मिटाने के लिए उसको जो काम करना है उसके लिए आवश्यक है, उसमें ऐसी मत्प्राप्तिकता जो जन-जीवन से भोतप्रोत हो। इतिहास नकारात्मक (नैगेटिव) स्वल्प है। सकारात्मक (पॉजिटिव) स्वल्प के लिए उसके साथ ऐसे कार्यक्रम का जुड़ना जरूरी है जो समाजगत हो। अर्थात् समाज में स्थित 'हार्ब' को जागृत कराने के लिए उसका भी हार्बजुक्त होना जरूरी है और यह हार्ब-श्रुति तभी सामाजिक रूप में कार्य-प्रवण हो सकती है जब उसका कार्यक्रम भी वैसा बने। ऐसा कार्यक्रम जो समाज की कल्याण का आह्वान करे, स्वयं भी कल्याणजुक्त हो और सामाजिक रूप में उस कल्याणवृत्ति को जागृत करे। रचनात्मक पक्ष सुचारु पत्र है। यह तो अक्षय्यमन्त्री है ही लेकिन ध्यान रखने की बात है कि केवल रचनात्मक काम कभी पर्याप्त नहीं होते। उसे जन-जीवन का आधार जरूरी है और जन-जीवन तभी आधार दे सकता है जब जन-जीवन से सम्बन्धित कोई भीषित समस्या हाथ में ली जाये।

धरुप्रसन्न-भ्रान्त्वोन्नत जब समाज के निर्माण में अपना पूरा हिस्सा दे एवं उसके द्वारा 'गुणों की प्रसामान्यता दोषों की सामान्यता' वाली भाव की स्थिति बदलने में भी पूरा योग मिले, यही हम सबकी आकांक्षा है।

अधुनात-आम्बोसन की पुठभूमि

—श्री देशमिह

आचार्य किनोबा ने एक बार कहा था कि 'सत्य और महिला पर एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश करना है जिसमें अति पाति न हो जिसमें किसी को छोपान करने का मौका न मिल जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति को सर्वांगीण विकास करने का पूरा सबसर मिले। आज ठीक इसी प्रकार के विचार आचार्य तुमसी ने 'अधुनात-आम्बोसन' के उद्देश के बारे में व्यक्त किये हैं, 'महिषा के प्रचार द्वारा विरह-सैमी और विरह-संश्लि का प्रचार करना। अधुनाती के विचार प्रवाह में मित्र-मित्र प्रवृत्तियों का अत्युच्च चार्म-व्यक्त मिलेगा। एक विशेषता मिलेगी जिसका अर्थों में पाता दुर्मम है। वह यह कि अधुनात-व्यवस्था की मूल भित्ति निपेक्षारमकता पर आधारित है। अस्तुतः यह कहा भी गया है कि निपेक्ष ही धार्मिक विपुल रहा करता है।

भारत का इतिहास साक्षी है कि वह सर्वत्र से धर्म प्रदान रखा है। धर्म की पुठभूमि पर ही भारतीय धारणों का विचार हुआ है। धर्म वह है जो भारत किया जाये। आज का युग सौतिकवादी युग है। विज्ञान के इस युग में भारतीय धार्मिकों ने किसी प्रयत्न को पूर्णस्वेण स्वीकार नहीं किया। उनही व्यवस्था में जीवन का मुख्य अर्थ निःशेषम् प्राप्ति रहा। परम्परा से बसी धार्मिक हुई अधुनात भारतीय संस्कृति सर्वत्र ही महिषात्मक रूप में रही। जिस प्रकार विष्णु विष्णु से पड़ा भर आता है उसी प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के मिलने से समाज एक संवत्स मूल में बन कर व्यष्टि से समष्टि का रूप धारण करता है। जन-जन की आत्मा के रूप में अधुनात समाज से सम्बन्धित है। वह मानव का ध्यान दृष्ट और विचारना चाहता है कि वह धर्म व्यव में प्रवृत्त होता हुआ, आर्चकियों की धीर से सावधान रहे और उनसे बचने का प्रयत्न करता रहे।

इन सबका सरल स्पष्ट प्रयत्न धनुषतों के पास से हो सकता है। धनुषतों का धर्म है, ऐसे व्रत जो जीवन के प्रतिदिन के व्यवहार में पहिचा पुख्ता, और सात्विकता की भावना का संचार करें तथा जीवन के नैतिक स्तर को ऊंचा करें। धाज यह व्रत कुलीन की तरह कड़े परन्तु बाव में निरपम ही फलदायक हैं। इस विचारवाच के प्रणेता एवं प्रवर्तक भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ आचार्य श्री तुमसी ने धाज के इस भौतिकवादी युग में मानव-कल्याण का जो बीड़ा उठाया है वह निरपम ही महान् है। मानवीय इतिहास धार्म्यात्मिकता और भौतिकता का संकसम है। धार्म्यात्मिकता की छत्रछाया में मानव ने नैतिकता को प्रहृण किया और उची नैतिक विकास का सक्रिय संचालन धनुषत-आन्दोलन कर रहा है। जनता के बिचारे हुए नैतिक स्तर को ऊंचा करने का प्रयास ही धवितन्त्र प्रयत्न है। धाज हृषय-परिष्कार की प्राथमिक आवश्यकता है उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह एक प्रबल प्रविया है।

धाज यदि मानव-संचार के वास्तविक रूप की म्झकी देखती है और भविष्य में उसके मुखरित रूप का आस्वादन लेना है तो जरिज-निर्माण के प्रतिरिक्त हूरता कोई मार्ग नहीं। धाज यह निर्निवाय संरय है और सभी विचारकों ने एक आवाज से इस इकार को पहचाना है कि व्यक्ति धृष्ट बने और अपने जरिज को धार्क बनाने। धाज की सबसे बड़ी आवश्यकता जरिज में सुधार करना है। धाज हमारे धामने समस्पाधों का डेर भगा हुआ है। मानव-जीवन की नैतिक गृहता उलमठी जा रही है। ऐसे समय जन-जन की भावना को धात्म रूप में परिवर्तन करने की जरूत है। उनमें नैतिक धाधों का एकत्रीकरण हो धाज ऐसी आवश्यकता दीख रही है क्योंकि व्यक्ति ही समष्टि का निर्माण कर्ता है। मानवीय कुप्रधाधों के बिच्छ नैतिक संपर्य ही उरका मूस धाधार है। धाज धात्म-विदधास धडा एवं हड़ता के धभाव में मानव धर्बरिठ होता जाता जा रहा है। भववान् महावीर के बधनों में किरने धारधमित भाव लिहित है कि धारमा से धारमा का संधेधालु करो। इसी उहृष को सेकर, नैतिक विस्वास पर व्यक्ति-विकास धनुषत-आन्दोलन का प्रमुख धाधार है।

धाधुतिक धर्धवादी युग में हमारा यह पहला और अन्तिम सधय बन गया

है 'आपो पीओ धीर मीज उड़ाओ'। जीवन की सुख-सुविधाओं—सोचविधाही सामग्री का चरम विद्यमान करना एक बार पहले भी इसी विचार-प्रवाह ने सैद्धांतिक रूप धारण किया था धीर चार्वाक-दर्शन के नाम से हमारे सामने आया। उस समय भी हमने इसकी वास्तविकता को पहचाना। आज फिर अस्तित्वता अष्टाचार धारि न मानव पर धारण डाल रहा है। परन्तु वह धारण अब क्याका डेर तक नहीं पड़ा रह सकता। संसार परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील संसार में परिवर्तन अवश्य होता है। युग प्रवाह है। संघर्ष देना है। युग संघर्ष मिय है। संघर्ष जीवन का मजबूत बुका है। यह संघर्ष मौक्तिक-वाह धीर अष्टात्मवाद का है। आज मानव की बधा सोचनीय है।

मौक्तिकवाद के नाम में क्या मानव अपनी वास्तविकता को भूले गया है उल—मैं देख रहा हूँ परिवर्तन न जाने परिवर्तन क्या होता? परिवर्तन आज के युग का गारु है। आज के इस मौक्तिकवादी युग में विश्व-व्यवस्था के मूल आधार 'सत्य' को हम भूल रहे हैं। जही विश्व प्रकाश की धोर अष्टात्म-आन्दोलन का कथम है।

आज की अज्ञान धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करने के लिए महारमा पांभी का नाम भर ले देना पर्याप्त होगा। अन्तर्नि सत्य का प्रण धीर अहिंसा का साधन लेकर सामाजिक धीर राष्ट्रीय प्रयत्नों को हल किया है। हमने अनुभव किया कि सत्य का धारण धीर अहिंसा की साधना व्यवहार के सूत्र है। वे आत्मीय होते हुए भी मानवीय हैं। यदि आज अन्हीं धारणों को सिद्धांतों में बांध व व्यवहार में लाकर साहित्य सुजमा करे तो जीवन समाज राष्ट्र एवं विश्व को बुगुमा बन मिलेगा। इस युग में एक काय तो हुआ कि कुछ हबयों में अज्ञान के भाव प्रानुत हुए धीर उन भावों ने संकल्पनात्मक शक्ति भी दी। आज अकर्मभ्यता फिर से कर्मभ्यता का कर ले रही है। अब धीरे-धीरे आत्म-अज्ञान की हीनता भी आचार्य गुरुजी के नेतृत्व में दूर हागी। एसी आधा होने लगी है। अहिंसा में भयकर बनेकों से शत्रु-विघात कराहते मानव की विश्व-जनीन संमटन आन्दोलन धीर योजना की धारणता है।

अष्टात्म-आन्दोलन पाठ्यिक प्रवृत्तियों के लिए एक गुरुक चुनौती है।

धनीकता, धनाचार और प्रव्यचार की महान भ्रमा को दूर करने वाला विषय प्रकाश है। धाव विषय का कायाकल्प सत्य अहिंसा अस्तेम ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के धर्मों के पालन पर निश्चयात्मक रूप से हो सकता है। इसी मूल सूत धाधार को लेकर अधुवत-भान्वात्मन कार्यक्षेत्र में उठप है। ध्यक्ति ही धमष्टि है और अधामिकता हिंसा दुराचार, अध्रान्ति धोपण सबकेसिए यह एक अधमोष मत्र है। नैतिक विश्वास के सहारे धन-धन के हृदय को भ्रुकुभोर कर उसके उत्पीडन में मानवता का धविष पड्डवाना ही अधुवत-भान्वात्मन की प्रमुख पृष्ठ-भूमि है। अधुवत-भान्वात्मन का मुख्य ध्येय मानव-मानव की दुष्ट धर्मों को दूर करना है। धमी हम जीवन की प्रधर प्रतिमा धापना और ज्ञान में बुद्धि कर सकने। यह ध्रान्तिधारी हृष्टिधोण धर्मधोमुखी ज्ञान की प्रेरणा जावूठ करता दुधा एक धात्मा एक हृदय एक मानता एक धार्य और एक धंमठन के रूप में है।

जीवन की स्थितियां ही जीवन को प्रेरणा देती हैं। मनुष्य की परिस्थितियां ही इतिहास निर्माण और भुग-परिवर्तन के सिए मनुष्य को प्रेरित करती हैं। मार्क्स ने कहा है—अपना इतिहास स्वयं मनुष्य ही बनाता है। मनुष्य चिन्तन धीस प्राणी है। वह धेतन अधेतन का धम्मूर्ण धामंभस्य है। अध से उसका पिड निर्मित होता है और मनस्तरब से उसके मस्तिष्क की प्रक्रिया होती है। मनुष्य के भीतर एक कोई और मनुष्य है जो अधमार्गों में भी ससुष्ट और धनुद्धियों के बीच भी भूष धे ध्याकुभ रहता है। उसका धाहार धास रोडी नहीं बल्कि धाव धीर विशारों का धीर्ध्व है। जीवन की परिधि में जो भी उपकरण प्रवेध करते हैं धनका एक उपयोग तो सूत मनुष्य करता है धीर दुधरा वह सूधम मनुष्य जो सूत के भीतर निहित है। हमारी संस्कृति धेस के धाधारधुजनों में हधारों धर्षों से धमी धा रही है। वह संस्कृति जिसकी धाधारधिता है—धेबा ध्याव धीर स्नेह की प्रबृति धीर जिसने यहाँ के धामाजिक धगठन को कीदृग्धिक जीवन को इतनी धताग्धियों तक धीवित धीर सबस बना रधा है। धाव का धमाज धाधना का प्रतीक धर रह धया है। उसके धध्यों में कमा का धीर्ध्व है प्ररणा का धवीव धार्ध नहीं। इस धिधा में भी

अधुवत-आन्वोसन अधुवर है ।

बिदक में धान्ति का साध्माय्य स्थापित हो सके, परस्पर सौहार्द की सद्भावना को जया पृथ्वी पर स्वर्ग ज्ञाया जा सके धीर ऐसे मधुमग का दर्शन हो सके, जहाँ धोपण न हो उत्पीडन न हो बंधन न हो इस विद्या में आचार्य तुलसी की बिदक की अधुवत के रूप में एक अधुवत देन है ।

मानव शक्तियों की तुल्यि अतिवार्थ है । उन स्वामादिक मांगों में एक मांग कल्पना-शक्ति की भी है । कल्पना मानव के ऐसे बूटे हैं जिन्हें पहन कर वह वास्तविकता के कठोर मार्ग पर चलन के योग्य होता है । कल्पना मानव के एस गर्म पक्ष है जिन्हें पहनकर वह वास्तविकता के तीव्र शीत को सहन कर सकता है । कल्पना उसका ऐसा मुदगुदा बिस्तर है जिस पर वह जीवन की कठोर मात्रा से बच कर विश्राम करता है । इसके बिना मानव का जीवन असहनीय हो जाता है । यह उसके धमाकों की पूर्ति का साधन है । बिदक की धान्तिम सत्यता के सम्बन्ध में मनुष्य के सिद्धान्त उसकी कल्पना शक्ति के प्रकाश हैं । यह प्रकाश सत्य ज्ञान पर आधारित है । कल्पनाधीन से ही मनुष्य धाकिष्कार, कला धीर साहित्य रचना के योग्य हुआ है । मानव की ऐसी कल्पना मन्त्रि कलाधों के रूप में प्रकट होती है ।

जीवन में कठिनाइयों पर विजय पाने के अयोग्य मन्त्रि बूठ धीर बेईमानी का धम्यायी बन जाता है । पागसपन कठिनाइयों का सामना न कर सकने का ही परिणाम है । धान मानव भीतिकवादी प्रयासों के आधार—कठिनाइयों में जा बिदा है । मानव को कठिनाइयों का साहसपूर्वक सामना करने की धमता सत्य धरिष्ठा अस्तेय ब्रह्मचर्य धीर अपरिग्रह के धामित मार्ग की धोर संकेत करता हुआ अधुवत-आन्वोसन धान एक निर्वेद्यक के रूप में बढ़ रहा है ।

अधुवत भान्दोलन

—कविवर भी बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

मुनि प्रवर धार्षार्य भी तुमसी द्वारा प्रारम्भ किया गया अधुवत-भान्दोलन हमारे देश के नैतिक पुनरुज्जीवन की विद्या में एक मंदममय एवं धावस्मक चरण निशप है। भारतवर्ष के अष्टाधों न सहस्रों वर्ष पूर्व मानव-समाज के उत्थान का उसके नैतिक विकास का जो तत्त्व बुद्धिगम हृदयगम एवं धाचरणगम कर लिया था उसी सनातन तत्त्व की अभिनव धान्ति यह धान्दोलन है। इस प्रकार के धान्दोलन धनेक रूपों में आज देश में चल रहे हैं। प्रजापधु स्वामी चरण नन्धी ने मानव-सेवा समाज की स्थापना का धीमच्छे करके सामाजिक न नैतिक विकास की प्रेरणा प्रदान की है। अर्पि विनोबाभावे का भूदान धान्दोलन भी इसी नैतिक विकास की चेष्टा कर रहा है। धार्षार्य भी तुमसी का अधुवत धान्दोलन भी देश की धारमा को धीर इस देश की समस्या को उजीव रूप से स्पर्ध करता है। देश की धारमा मानो धान एक धन्ने गलियारे में धाकर धटक गई है। इसी देश की क्या समूची मानधारमा। धीर—

धाकर धान्ने गलियारे में ठिठका धव पति का धूध धरण
धविधुध लपन हत धुध धवन धव ठिठका संधन रत-धन-धन।
धार्धका का धानध धना, धव संशय की धुधुनी धनी,
धव लर्ध धमध समर्ध धुधा, धिता की धधुधुनी धनी।
धव रवत राध धदिभाग धुधा, धव नैध हो धये धाल-धाल,
धवाधोधुधधाल धिल धन्तर का धुधुकार उठा धव धुध ध्याल।

धव ऐसी स्थिति हो गई तब ध विनोबा ये तुमसीगणी ये प्रजापधु, महारमा चरणानन्ध धूँँ धीधन का धभिनव सनातन उन्धेध देने के लिए धामारे धीध प्रकट हो गये।

मानव-समाज की इस समस्या के निष्कर्ष इस प्रकार के समुपगमन (approach) को मँते स्नातक कहा है। हमें अपने मन की घोर अपनी बुद्धि को यह बात धरणी रीति से समझ लेनी है कि मानव की वर्तमान समस्या की हपरेका क्या है ? हम सब येन केन प्रकारेण जीवन-यापन तो करते ही हैं पर जीवन यापन करते हुए भी मानो हम किसी बस्तु की खोज में रहते हैं। खोज किन बात की ? इस बात की कि जीवन स्वभाव धान्यमय उस्नासमय निरस्त बर्तनम, मैत्री व कल्याणमय चर्चिता रहित घोर सम्मय बने। घोर हम जीवन में न जाने क्या है ? पूरा ईष्यो असत् व्यवहार कूरता लिप्ता चर्चा-उठरी धापा बापी। इस प्रकार हम अपने में अन्तर्द्वन्द्व पाते हैं। त्रय असत् निम्नगा कृतियों के बाध है। पर हम उनको प्रतिबन्धित करने के धर्मिणापी हैं। यह मानव-समाज की समस्या है।

हम भयभीत हैं बेर-बाध को पाल गोन रहे हैं घोर चाहते हैं कि इन मनोविकारों से पूरा निज जावे। एक बाध में यदि कई तो यों कहें कि धाम की मानव-जमस्याएं घोर धार्मिक विकास की (Father Evolution) समस्या है। यह त्रिपथ त्रिभुज अणु घोर धामे कैसे बने ? यदि वह घोर धामे नहीं बढ़ता है घोर ऊँचे नहीं उठता है तो मानवता का विनाश हा सकता है। मानव को घोर धार्मिक विकसित होना ही होगा इनके प्रतिरिक्त उठके निष्कारण नहीं है।

मानव के ऊर्ध्वतमन धर्मार्थ घोर धार्मिक विकास के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके राष्ट्रीय धर्मों में कोई प्रायि-भास्वीय (Biological) परिर्बतन हो। इसी छोड़े तीन हाथ के पुत्रों में ही महाप्राण मानवों का रूप धरा है यह हम जानत हैं। राम कृष्ण, विमदेव नवागत वीष्णुग्रीस्ट, यात्री—ये सब जो मैत्रीय होते हुए भी निरिन्द्रियबन् रहते रहे, इनी छोड़े तीन हाथ के धर्मों वाले ही तो ब न। अतः धाम हम भीमिक विकास के लिए प्रयत्न नहीं करना है। हमारा यह छोड़े तीन हाथ का तन महामानवत्व की घोर नारा-धरुण की घोर हमें से जाने में सर्वथा समर्थ है। हमारे पूर्व धर्मतापी पुण्य इस बात के धर्माध्य प्रमाण है।

तब प्रस्न है कि मानव-समाज विकसित कैसे हो ? कोई माने चाहे न माने मार्ग बही है और हमार पूर्वज हमें सिखा गये हैं । क्षमा तन बान चौब र्याग क्षान्ति अपिसुनता भूषबया धनोसुपता अचापस्य मार्दव धारम-बिनि ग्रह धारि गुणों को जीवन में लाए बिना काम चलने का नहीं । लोग कह उठते हैं—अजी ! सामाजिक डांचा बदलो सब ठीक हो जायेगा । क्या मजमूब जहां सामाजिक डांचा बदल गया है वहां महामानवों का आविर्भवि होने लगा है ? नहीं भाई ! सामूहिक परिवर्तन सामाजिक नव-निर्माण की आवश्यकता से मुझे इन्कार नहीं । पर उस न नूलो जो समाज मवन की ईंट है । वह है 'अ्यक्ति' । अ्यक्ति का परिवर्तन आवश्यक है और यहाँ हमारा माग प्रबलन तुमसीगणी बिभोबा धारि करते हैं ।

अखुवत—एक छोटा-सा व्रत जीवन में अंगीकार करो । उसे निमाओ । तुम बबोवे कि परिवर्तन आरम्भ हो गया है । 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य चायते महतो मयात्' । मेरी समझ में यही आचार्य श्री तुमसी का सन्देश है । कुम्हार, लुहार चमार, व्यापारी ब्राह्मण सब एक अखुवत के द्वारा एक छोटे से व्रत के सहारे जीवन में और इस प्रकार समाज में परिवर्तन ला सकते हैं । हमारे पुरण पुरयोत्तमों ने यह ठरक हूबमगम कर लिया था । इसी कारण वे राम-धाहित्य पर बस बेदे वे । आचार्य श्री तुमसी न यह अखुवत-आन्वोसन बनाकर हमारे समाज का पब प्रवर्तन किया है । मैं उन्हें एक नैतिक अ्योक्ति-धिखा मानता हूँ । मैं उनके सत्-अंवरणशील अयक निरलस चरणों में अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ ।



अणुव्रत और सांस्कृतिक उन्नयन

—श्री बीनेन्द्रकुमार

उत्थान तो नैतिक ही होता है। यह बढ़ जाए या उसका बस बढ़ जाए या प्राणियों के पास बल-सम्पत्ति बढ़ जाए तो उसको सही धर्म में मनुष्य का उत्थान नहीं कह सकते। मनुष्य काया नहीं है न पदार्थ है, न उसे बाहर की वृष्टि चीजों के मान में मापा जा सकता है। वह तो आत्मबान् है। अन्तर की अज्ञा साहस सम्पन्न प्राणि में ही उसका सही मान और मूल्य है। दूसरे वैद्य साधन सम्पत्ति या उत्पादन के परिमाण से जीवन के ऊँचे मान का निर्लभ्य प्रगट करते ही तो ही सकता है अन्ततः तो सही वह वहाँ के लिए भी नहीं है लेकिन भारतवर्ष को तो ये बिलकुल ही नहीं चाहिए। यहाँ की संस्कृति इस प्रकार की नहीं है न वह इतनी सामयिक या पस्तक-प्राणी है। वह मनुष्य के मूल तक जाती है और उसके धर्मान्तर से जुड़ी हुई है।

अणुव्रत में प्रथम बात है। व्रत का धर्म मनुष्य को माना समारम्भों से बचाना है। मामूली तौर पर प्राणियों यहाँ बिलकुल रहता है। चारों तरफ की बाह उसे सताती है और मनी कुब्र वह या सेना चाहता है। ऐसे वह दुःख भी नहीं पाता केवल भास पाता है। इच्छाओं को खुसी छोड़ने से मनुष्य का यही हास होने जाता है। पानी के घोल में जैसे बालू पर मायठा हुआ हिरण्य अन्त में व्यास नहीं कुभा पाता केवल भाव कर मर जाता है जैसे ही इच्छाओं में बहते हुए और भागल हुए प्राणियों का हास होना बड़ा है। वह बड़ा यत्न करता है और उखाड़-नखाड़ करता है अन्त समय पाता है कि वह खाली हास है। वह भूट चुका है और अणुव्रत का सब-कुछ गंवा चुका है।

व्रत इमी के खिलाफ बैठावनी है। यानी उससे हमें टट भिन्नता है। मरी न पाम किनारे न हों तो जैसे वह पीतकर मूत्र बाएणी, दूर तक नहीं जा सकेगी, जैसे ही व्रत के अरिण प्राणियों को किनारे नहीं है पावेगा तो उसके

व्यक्तित्व का वेग निष्कलन बना जाएगा धीर यह अभिष्ट ठहरे या घागे नहीं जा सकेगा। इस तरह व्रत जीवन को सफल धीर उन्नत करने का उपाय है। सोम कहते हैं कि धर्म में नकार होता है। यह न करो यह न चाहो यह न देखो धीर यह काम न करो। धर्म में इस तरह के निषेधादेश बहुत मिलते हैं, पर धार्मिकता तोन जैसे ऐसी सीमाओं धीर न्यायाओं को पसन्द नहीं करती। य मानते हैं जीवन ऐसे स्वच्छ है, प्रशस्त नहीं होता।

पर यह भ्रान्त धारणा है। नकार तो रेखा है जिसके धन्दर खन भिरता है। ऐसा तो घुग्ग है जो शून्यहीन है वही रेखा के बिना हो सकता है। इस प्रकार की निषेध-रेखाओं से बचप कर कोई घुग्ग ही बन सकता है सफल नहीं बन सकता। असंयत व्यवहार से कभी किसी का सम्पन्नता नहीं मिली है। समय में स्वेच्छापूर्वक मन को रोकना होता है। यह नहीं है कि बाहरी प्रभुग नाम नहीं करता लेकिन प्रभुग यदि भीतर का भी न हो तो ऐसा निरकृष्ट प्राणी स्वयं धन लिए धन में मार स्वल्प हो जाता है। कहां ठा वह एसे मुक्त बनना चाहता है पर फल यह होता है कि इस प्रकार वह धन को प्रतिधन अन्ध में धीर धारों धीर सं नकडा हुआ अनुभव कर जाता है।

धनु धनस्व स्वत्पास। कहा है—'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य प्रापते महता भयात्' इस तरह व्रत का स्वस्मारम भी हमारे विद्वत जीवन का नहीं दिशा में मोड़ सकता है।

एक सम्पत्ता है जो धारणी को धीर उसकी इच्छाओं को सर्वतत्र स्वल्प होने का सोम लेकर उसे नृता छोड़ देना चाहती है। यह उसे धनने अधिकार की चेतना देती है धीर बताती है कि उसका अधिकार धर्मित धीर धर्मी है। इस प्रेरणा के बल पर वह बढ़ना चाहता है धीर मुक्तोपमोय की सब नामधी अधिकारिक धन लिए बढेरना चाहता है। इस प्रयत्न में वह धूमरों के धु न मुक्त या किमी प्रकार की नीति धनीति कर्तव्याकर्तव्य की धारणा पर धटकना नहीं चाहता। निःसन्दह बेसी प्रेरणा में से नृक ठरककी हुई है। मधीनें बनी है धीर उनसे पडाबड मात धमार हो रहा है, लेकिन यह कहना कठिन है कि इस धारणी का धास कम हुआ है या मुक्त बडा है। कारण उसमें धारणी धन

लिए बाह्यता है धीर इसमें हमारे के साथ के अपने सम्बन्ध की स्थायिता का विचार नहीं रखता है। अपने अधिकारों के पीछे दूसरे के अधिकार का ध्यान नहीं रखता है यानी अधिकार की धारणा में कर्तव्य की भावना को दबो देता है।

दूसरी तरफ वह संस्कृति है जो बल कर्तव्य पर बेती है। जिसमें धादमी की निजी उन्नति हमारे से बिरोधी नहीं होती। ऐसे वह सामाजिक धीर सार्वजनिक होती है। व्यक्ति के ऐसे संस्कार में ही समष्टि का मुक्त हो सकता है।

धाय जबकि राजनीति का दूसरे धर्मों में अधिकारपराम्यता का भाव सबके मनो में छाया हुआ है तब धादर्यक है कि कोई धाबाज उठती जो हम मनीषिका से धादमी का उच्चार करती। धादमी यों अपने से दूर बसा जाता है धीर धुब अपने लिए धजनबी-सा हा जाता है। लेकिन जैसे इजिल में लिखा है—'धादमी मारी दुनिया को भी पा जाए तो उससे क्या होता है धपर वह अपना धाया को बैठे। मनुष्य जाति कुछ ऐसे ही संकट में है। दुनिया को तो उमने बहुत धारा पा लिया है लेकिन अपने में वह कोई-भी लगती है। सब है कि उनके धन्तर में एक मन्त्र-सा मचा है। मानव जाति के विचारक धीर बिलकूल मान सब नहीं चिन्तित हैं धीर पाला बाइ रहे हैं कि धुब कहाँ है ? हात की प्रगति जहाँ हमें धाम गई है वह तो बढ़ा है स्वर्न नहीं नरक है। उमम हर पड़ी मुझ के धा पटने की विनीयिका धाई रखती है। धादमी म्यल रहता है लेकिन अस्त भी रहता है। विचारक मानो फिर ये सोच करके पा रह हैं कि उनके धीर उनकी प्रगति के धापार में सही धादशा नहीं वे धीर सही मूम्य नहीं वे। मसती जड़ की भी धीर मुबार को भी जड़ में ही हाता है। चलती सम्बन्ध के सहलहाने पले धव भी बाहे ध्यर से माहक लपते हों पर तना पल धुका है धीर म्यन्धता का धारा महाबुध डहने वाला है कारण जड़ उसकी मानव सत्य की गहराई में से धागी लुपक नहीं बीच रही है। वे उमम धमम धीर विच्छिन्न हैं।

धादर्यक है कि सामाजिक धीर सार्वजनिक—जैसे कि बैयलिक जीवन का मूल में उस सत्य से जोड़ा जाए जो माधेकासिक धीर साधेधेसिक है। जो यहाँ बड़ी बरनता नहीं हो जा मानवता को एक मानता हो धीर उसके सामुदायिक

या भेरी-बद विग्रह का अनिर्वाय धर्मरूप मानता है जो इस तरह मानव के परम्पर चर्य की जगह उनके आपसी सहयोग को आधार देता है जो मर्या की जगह स्नेह का आधार करता है।

मेरा मानना है कि मनुष्य की अन्तरात्मा में यह आलोकन सम्भरता स बन रहा है। यह भी मेरा विश्वास है कि इससे से एक ऐसी उत्थानि का जन्म मिलेगा जिसके धामे इतिहास में प्रसिद्ध होने वाली राजनीतिक अन्तिया निस्सार जान पड़ेंगी। राष्ट्रीय सरकारों की उत्पन्न-युक्त का महत्त्व उसके सामन छोका रह जाएगा।

हर देश के सम्भर विचारधीन लोगों में इस इष्ट ज्ञानि के तत्त्व उत्पन्न रहे हैं और कोई नहीं कह सकता कि कब वे पुटकर एक होकर एक नया प्रकाश जगत को देन में समर्थ हो जायेंगे।

अणुव्रत-आन्दोलन भी मुझे उस विद्या का एक प्रयत्न प्रतीत होता है। उसके प्रतिष्ठाता और संभालक में तेज है और बग है। संगठन की उनमें क्षमता है। स्पष्ट स्वार्थ भी उनके पास नहीं है। अनुयायियों की काफी संख्या उनके पीछे है। इस तरह यह आन्दोलन ध्यान खींचता और धाधा बचाता है। अनुयायियों का समुदाय अपने में जितना पुष्ट और कर्तव्यशील होगा उतना ही आन्दोलन कमरेगा। सबसे बड़ी कमीटी उस समूह की विसर्जनशीलता है। राजनैतिक दल शक्ति के प्रतीक इसीलिए नहीं होते कि उनमें विसर्जन शीलता का यह गुण नहीं होता। उनमें धाध और धाहरण होता है। वे देने से ज्यादा खींचते हैं। आरम्भिक बर्ष ऐसे ही विसर्जनशील समूह को लेकर कमक व। पीछे वे सम्प्रदाय बन गए, जो बर्ष को प्रकाशित उतना न करते वे जितना उसे ढकने लग जाते वे। विसर्जन की प्ररणा शक्ति का सञ्चल है। उसके प्रभाव में समूह बल की जगह निर्बलता के प्रतीक हो जाते वे।

अणुव्रत-आन्दोलन मानव-अविष्य में हमारी आस्था को पुष्ट करन कासा है। उसकी गतिविधि के सम्बन्ध में मैं सदा उत्सुक और जिज्ञासु रहा हूँ। उसमें निर्माण की सम्भावनाएं हैं।



अणुवत् घोर नतिक पुनरुत्थान

—श्री बिट्ठू प्रभाकर

धाम के विज्ञान के युग में नैतिकता सारेला है और यह इसलिए कि विज्ञान स्वयं निरपेक्ष नहीं है। विज्ञान गति के सक्तता है लेकिन विद्या नहीं। उममें एकलित है लेकिन विवेक नहीं। भक्ति की गति की जीवन में अनिवार्यता है पर उमकी सत्ता स्वतन्त्र नहीं है। उमकी अनिवार्यता किमी के सहारे है और यह सहारा है धारमबल का। यह एक अदृश्यत व्यापार है। स्वतन्त्र यहाँ कुछ भी नहीं है। स्वयं स्वतन्त्रता नहीं। उम मारी की बहानी सब जानते है जिसने कहा था कि यह सड़क पर जाट विघ्नाकर सीमे को स्वतन्त्र है। उत्तर देने वाले ने उत्तर दिया था कि बेसक यह ठेका करने के लिए स्वतन्त्र है लेकिन जिस तरह यह स्वतन्त्र है उही तरह मोटर चाना भी उस सड़क पर मोटर चाना के स्वतन्त्र है जैसे ही उसके इस व्यापार से मारी के प्राण संकट में पड़ जाए।

यही से स्वतन्त्रता की निरपेक्षता नगण्य हो गई, लेकिन उमकी अनिवार्यता पर कोई धाँक धाई हो तो कोई बात नहीं। कह ता इसी स्थिति को अहिंसा भी कहा जा सकता है। क्योंकि स्वच्छन्दता आकाशा को खुला छाड़ना हिंसा है और संयम अर्थात् सावधानी दूसरे का ध्यान रखना अहिंसा है। बल इमी आधना में ये उपजता है। प्रत के बिना संयम सावधानी और दूसरे का ध्यान रखने की बात सम्भव ही नहीं हो सकती है। यह दुसरी बात है कि ये बल बाहरी शक्ति द्वारा आरोपित नहीं किये जा सकते। वे तभी अस्यागुणकारी हो सकते हैं। जब वे स्वतः स्फूर्त हों क्योंकि तब वे धारम-अन्वयन में से उत्पन्न हैं। धारम-अन्वयन धारम-ज्ञान से ही सम्भव हो सकता है। इसलिए धारम ज्ञान के बिना कुछ नहीं है। विज्ञान भी उसके बिना पंगु है।

बही बात राजनीति के बारे में कही जा सकती है। उममें निश्चय है पर

उसके पीछे जो भक्ति है और वह स्वर्ण की शक्ति है अर्थात् पुत्र हिंसा है क्योंकि वहाँ स्वर्ण है वहाँ समय नहीं है। मंथन नहीं तो आत्म-ज्ञान कैसा ? आत्म-ज्ञान नहीं तो विद्या कीमत होगा ? फिर तो मटकना ही पड़ता। सा विज्ञान और राजनीति आज मटक ही रहे हैं। और जूनि एकिन दोनों के पास है इसलिए विद्याहीन शक्ति अर्थात् असमय शक्ति जो कुछ कर सकती है वही आज हो रहा है। नैतिक अराजकता स्वर्ण हिंसा कुछ भी कहिए लुप्तकर बन रहे हैं।

हमने क लिए अपनी स्वतन्त्रता का प्राणिक विसर्जन त्याग है। राजनीति का जन्म इसी त्याग के आधार पर हुआ था। लेकिन आज वही राजनीति विनुद्ध हिंसा बन गई है क्योंकि उसमें स्वर्ण का उभय हो गया है और वह इसलिए सम्भव हुआ है कि हमने त्याग को दूसरे के लिए मान लिया है जबकि वह असमय में अपने ही लिए है। क्योंकि अन्ततः जितना कुछ अच्छा-बुरा हम करते हैं उसकी बिया के पीछे जो शक्ति होती है वह अपनी ही मुरता की भावना में से उपजती है। अतः उसके परिणाम का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है। यह स्वार्थ है लेकिन यही स्वार्थ जब व्यापक बनता है तब परमार्थ बन जाता है। स्वार्थ और परमार्थ की विभाजन-रेखा बहुत गहरी नहीं है क्योंकि स्वार्थ से व्यक्ति कहीं मुक्त नहीं है। लेकिन जब वह अपने स्व को दूसरों के स्व में समा लेता है तो स्व और पर का एकीकरण हो जाता है। यह स्थिति तभी सम्भव हो सकती है जब आत्म-ज्ञान और विज्ञान दोनों का समन्वय हो। प्रगति के लिए शक्ति और विद्या दोनों की शक्ति है।

लेकिन यह प्रश्न का अन्त नहीं है। विज्ञान और राजनीति और कहेँ तो अर्थनीति क्योंकि आज की राजनीति अन्ततः अर्थनीति ही है, इस हम को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि आज जो अराजकता और अर्थनीति है, जयका मूल अभाव—भ्रष्ट है। बाठ ठीक जान भी पड़ती है क्योंकि हिंसा में मोह तो है ही उसे ही वह पैस से हो या किसी और प्रकार की मत्ता न। पैस में बड़ी शक्ति है। विज्ञान ने उसकी शक्ति को और भी बढ़ाया है और मोह के कारण वह कुछ के हाथों में आकर केन्द्रित हो गया है। इस मोह के पीछे

विज्ञान अर्थात् बुद्धि की शक्ति है। इस कारण कुछ सर्व सम्पन्न हैं और कुछ सबहास्य। जब ऐसा है तो विघुट हिंसा है क्योंकि इसमें एक ओर बूणा है मोह है भोग है और दूसरी ओर ईर्ष्या प्रतिदोष तथा क्रोध। विरुध यही तक नहीं है वह प्राये है और इसके निराकरण में है। यह स्थिति कैसे मिटे ? निरन्तर स्पर्धा से तो यह मिटेगी नहीं। सर्व सम्पन्न के पास से भी इसका निराकरण नहीं होगा। इसके लिए तो जो सर्व सम्पन्न हैं, उन्हें केवल गति का ध्यान छोड़कर विद्या का सहाय लेना होगा। अर्थात् उन्हें स्वार्थ के लिए त्याग करना होगा। परमार्थ और त्याग में कुछ की बन्ध की भावना दिखाई देती है। उसका कारण वैसे कि पहले बता चुके हैं केवल यही है कि वह दूसरों के लिए समझ लिया जाता है। जब व्यक्ति यह समझ लेगा कि त्याग में उसी का भला है तो उसमें न बन्ध शेष रहेगा और न पीड़ा। क्योंकि तब न मोह रहेगा न स्व की सुरक्षा का प्रश्न।

नैतिकता इस प्रकार 'स्व' अर्थात् 'मैं' के हान्य पर निर्भर करती है। 'मैं' धर्मग कुछ नहीं है जो कुछ है वह मानव है। अलुबल-आन्धोमन का मुख्य आचार भी वही तक हम समझ पाये हैं यही हान्य है। वह आश के समाज में जैसे अष्टाचार को मनुष्य की बुद्धि को जाहृत करके मिटाना चाहता है। वह बुद्धि को सही दिशा देने के लिए कुछ बातों का विचार करता है। अपने पर नियन्त्रण रखने की भावना जाहृत करता है। बत क्या है अलग-अलग उनका क्या मूल्य है यह कुछ बहुत धर्म नहीं रखता। तत्व की बात तो धारम-ज्ञान द्वारा अपने पर नियन्त्रण रखने की है। वह भावना हम आन्धोमन के पीछे है इनीमिए उसकी उपादेयता धर्मदिय है।

भेदित घट इत भावना को बहण करने की है। इसके बिना हृदय-भरि वर्तन एक स्वप्न, एक दम्भ बनकर रहे जायेगा। आचार की अष्टता की पुकार नहीं नहीं है। सुम-सुम में नैतिकता और धर्मनैतिकता में संघर्ष हुआ है। यही मर्त्य आश भी है और इस बात की जोपला करता है कि मनुष्य के इस भावना को ग्रहण नहीं किया। इसलिये इस आन्धोमन के संघामकों का मार और भी बढ़ जाता है कि नैतिकता जड़ न बन जाये भेदनता उनकी जाहृत रहे। वह

पक्ष समझने की शक्ति दे गया घोटन की नहीं। क्योंकि विभिन्न विधायी वर बाहुस्य घोर जटिलता उसी उद्देश्य की हत्या कर देते हैं जिसके लिए जनका जन्म होता है। ऐसा होना ठीकी इसके संचालक प्राचार्य की तुलसी के शब्दा में 'असुखती-जन्म मानव की अन्तर-कृतियों को मांजने में बड़ा मध्य हो सकेया'। जनका यह स्वप्न कि 'असुखत की मोक्ष पर अहिंसक समाज की रचना तो बहुत सम्भव है' निरूप्य ही पुरा हो सकता है, पर ठीकी जब यह सतत पूरी हो। महीं तां नैतिकता क्या है और क्या नहीं है, इसी बात में फंसकर रह जायेंगे। यथ बोधो या भूठ मठ बोधो यह कहना ठीक है पर इनके साथ इस बात को भी हम न भूलायें कि ऐसा करना है कितना कठिन। यथ साध्य नहीं है साधन है। समाज-व्यवस्था का परिवर्तन अनिवार्य न हो प्राथमिक प्रथम है।

घात्र के प्रपञ्चाचार से कीर्णित युग में असुखत-आन्दोलन का स्वर मरणा सग्न मानव के मुख में समूठ बाजने बीसा है। एक घोर बड़ा असुखत के पीछे मनुष्य की बुद्धि विश्व को समूठ नष्ट कर देने की धमकी दे रही है, वही असुखत-आन्दोलन के पीछे मनुष्य का विवेक मानवता की रक्षा के लिए समूठ हो उठा है। मते ही विवेक का यह स्वर घभी सीस हो पर उद्यत होना ही प्रासाप्रय मविष्य का सूचक है।



पराशुराम-ग्रन्थोत्तर एक अध्ययन

— श्री रामगोपाल विद्यालंकार

समकालिक सम्पादक नवभारत टाइम्स

समय-चार वर्ष से हमारे देश में पराशुराम-ग्रन्थोत्तर की चर्चा चल रही है। इस ग्रन्थोत्तर की प्रस्तावना के नेताओं विचारकों और समाचार पत्रों ने तो भी ही हैं, विद्वानों के भी कुछ विचारकों और समाचार पत्रों में इस ग्रन्थोत्तर को मानव-समाज के लिए हितकारक बतलाया है।

इतना होने पर भी हमारे देश के अनेक व्यक्ति और वर्ग ऐसे हैं जो इस ग्रन्थोत्तर को सर्वत्र प्रस्तावना के दृष्टि से देखते हैं। जो लौक्य प्राप्त करते हैं, उनके बसा करने का कारण प्रायः अज्ञान और संकीर्णता पर आधारित है। उन्होंने या तो यह नहीं भाँति समझ ही नहीं कि पराशुराम हैं क्या और या इस ग्रन्थोत्तर को एक सम्प्रदाय विरोध के आधार पर मुनिपों तथा साधुओं द्वारा प्रारम्भ किया गया था वह उसे उतरे और सर्वत्र की दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया।

अतः यह नहीं भाँति समझ लेना चाहिए कि यह ग्रन्थोत्तर है क्या और उसे चलाने वालों का इसे चलाने के मूल में उद्देश्य क्या है? केवल किसी धर्म विरोध प्रस्ताव सम्प्रदाय विरोध से सम्बन्ध होने के कारण किसी वस्तु को अज्ञान मान कर उतरी उतरे कर देने की प्रवृत्ति बुद्धि-नयत तो है ही नहीं मान्य बातक भी है।

सब प्रायः प्रायः समाचार के ऐसे वर्ग हैं जो सभी धर्मों में सम्मिलित हैं और जिसका विरोध अज्ञानिक मनुष्य भी नहीं कर सकता। परन्तु यदि कोई व्यक्ति इस सर्वसम्मानित और सर्वसम्मानित आधारों के उतरे की ओर से अपने काल केवल इन कारणों से लगे कि उते, उसके धर्म प्रस्ताव से भिन्न

धर्म या सम्प्रदाय का कोई उपदेशक या बुध बन रहा है तो वह अपनी ही हानि करेगा उस बुध की या उपदेशक की या उसके धर्म या सम्प्रदाय की नहीं। कोई किसी सुन्दर तथा सुयन्त्रित पुष्प की ओर से अपनी आँखें तथा नाक केवल इस कारण नहीं मोड़ लेता कि वह पचवे बगीचे में खिल रहा है। हम पौष्टिक तथा स्वास्थ्यवर्धक भोजन का केवल इस कारण परित्याग नहीं कर देते कि वह हमारे बेट में उत्पन्न नहीं हुआ। पुरानी कहावत है 'बालारपि प्रहीतस्य मुक्तमुक्त मनीषिभिः'।

अशुभ आन्वोसन का धारम्भ लगभग चार वर्ष पूर्व स्वैतान्बर जैनधर्म के अग्रगण्य तैरापंथी सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुमसी ने किया था और इसमें उनका उद्देश्य तैरापंथी सम्प्रदाय का विस्तार करना नहीं अपितु जाति वर्ण बंध और धर्म का भेद-भाव न रहने हुए मानवमात्र को संयम-पथ की ओर आकृष्ट करना था। इस आन्वोसन की ओर जैनैतर सज्जनों के भी बहुसंख्या में आकृष्ट होने का प्रधान कारण यही है कि इसमें प्रतिपादित आचारों का सम्बन्ध धर्म-विषय या सम्प्रदाय विषय से न होकर मानवमात्र के कल्याण से है।

कोई भी मनुष्य जब किसी कार्य का धारम्भ करता है, तब स्वभावतः और अनिवार्य रूपसे अपने ही साथियों से करता है। पीछे उसकी सफलता प्रथम उस कार्य के गुणों से आकृष्ट होकर अन्य लोग भी उसके सहायक बन जाते हैं। इसी प्रकार तैरापंथ के आचार्य श्री तुमसी ने भी स्वभावतः इस व्रत का उपदेश पहले-पहले अपने ही शिष्यों को किया और धीरे-धीरे शिष्यों द्वारा उसका प्रचार करवाया। पीछे जैनैतर सज्जन भी उभर आकृष्ट हो गये।

अशुभ में जिन आचारों का पालन करने की प्रतिज्ञा बड़ी लोगों से भिदाई जाती है वे सब हिन्दू धर्मवादी वैदिक धर्म में भी 'यम' नाम से प्रकृत नाम से प्रचलित हैं—'सत्याग्निष्ठाप्रत्येय ब्रह्मचर्याग्निर्व्रहा यमा'। इन्हीं पाँच आचारों के पालन की प्रतिज्ञा अशुभप्रतिज्ञों से विभिन्न शब्दों में करवाई जाती है। भेद केवल इतना है कि ऊपर उद्धृत सूत्र-नाम्य में इन पाँचों आचारों का निर्देश सूत्र-नाम रूप में कर दिया गया है और अशुभ की प्रतिज्ञाओं की भाषा धर्म के शोक-व्यवहार को देखकर उसको सुभारणे की आश्वासनात्मक प्रतिज्ञाओं के अनुसार

बनाई गई है।

धनुषत का सम्बन्ध केवल तेरावंश से ही नहीं है, यह अनेक बटनामा से स्पष्ट हो सकता है। आचार्य भी तुलसी ने जो उपदेश और जिन धारणों का प्रचार 'धनुषत' के नाम से धारण किया, वही उपदेश और उन्हीं विचारों का प्रचार, समय-समय उसी समय महात्मा गांधी के सिप्य विनोबा भावे ने 'सर्वोदय' नाम से किया। 'सर्वोदय धान्धोलन' का सम्बन्ध विनोबा भावे के साथ जोड़ा जाता है। परन्तु 'वस्तुतः' उसके विकास में पाँचीमी के एक भय सिप्य स्व० मधुमाता ने भी बहुत ही योग दिया था यह बात स्वयं विनोबा भावे भी मानते हैं।

ऊपर पाँचों विषयों का सूचक वाक्य उद्धृत करके तो यह बतलाया ही है कि धनुषतों का मूल हिन्दूधर्म में भी है। धर्म भी अनेक वाक्य और श्लोक भादि इस विचार की पुष्टि में दिये जा सकते हैं। एक श्लोक है—'वृत्ति समा दमेत्स्तेव पाँच निम्नियतिप्रहूः, धी विद्या सत्ययधीनो द्यकं कमलप्रणम् । पाँच यमों के धारित्व 'पाँच-संतोष तपः स्वाध्यायेस्वर प्रणिधानानि नियमाः वाक्य में जो नियम दिये गये हैं वे भी यमों की साधना में सहायता के लिए ही हैं।

यदि एक जित प्रकार यह बतलाया गया कि धनुषतों का सम्बन्ध केवल तेरावंश से नहीं, उसी प्रकार हफाय सुझाव है कि इस धान्धोलन के विस्तार में यदि कुछ क्षेत्रों में साधु और संन्यासी भी सहायक हो जाएँ तो इसका विस्तार तो बढी होना ही जो लोग इतर संकीर्णताकय धारक नहीं होते उनके संघर्ष और संकीर्णता के भाव भी दूर हो जायेंगे। जि सम्बन्ध हम सुझाव की क्रियाविध करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं परन्तु उन्हें यत्न करके दूर किया जा सकता है। केवल कठिनाइयाँ के भय से कार्य का धारण न करना दूरवसिता तो नहीं है।

“प्रारम्भते न जनु विप्यनयेन भीर्षः,
प्रारम्भ विप्यविहता विरमन्ति नम्यः ।
विप्यं जुव जुतरपि प्रतिहृम्यमाताः,
प्रारम्भ मुत्तयजना न परिवयजन्ति ।”

कथनी और करमी का प्रतीक—अणुव्रत-ब्राम्होसन

—श्री माताजीन मगरिया
सम्पादक हिन्दी टाइम्स

आकाश की नीसिमा में जैसे जैसे जस काहिनूर और तारों के गर्गत जैसी रात की रौनक बढ़ाकर उसका मूर निबार देंगे इसमें कहीं मक नहीं और यह नी सही है कि नक्षत्रमाला की वीणावली रानी विभावरी की तमिल राग्य परित्रि से बाहर भी उस प्रकाश-राग्य की एसी कला है जैसी की निशा-महिषी की धासन-व्यवस्था में कही न मिले । माना माने जैसे मंगल प्रभात की प्रबुद्ध प्रमा का नमूना तन पर छोड़ फिरे हैं ये तारे । धामोक के इन अग्रदूतों की सबसे बड़ी आसियत यह है कि प्रकाश-लोक की चर्चा तो थ करते हैं—कहते नहीं हैं । इतना सानोपोग है इनका करना कि कहना खुदबखुद उममें थ चमकता रहता है । धावना-ज्योति से स्वयं को सुसगाकर प्रकाश का पैयाम पठ हैं य । उपा काल की अस्थामा सबेरे की ताजगी बत-गोमा की खिसती हुई मृगत सग्ना पक्षियों का कसरब और जामरण की जिनगी मानो प्रकाश के पहीर सिधारों के प्रिय परिणाम हैं ।

इसी तरह हम कहना चाहेंगे कि धारधों क बड़े-बड़े स्वरूप चरित्र-वचा की मुक्ता-मासा और नैतिक उत्पान के बड़ शब्द करने की जरूरत रखत हैं । सत्व और अपरिग्रह महान् शब्द हैं ये—स्वर्ग से भी बड़े । लेकिन सवास यह है कि इन्हें जीवन की सार्वजनिक भूमि पर उताग कैसे जाये ? तवागत बुद्ध हुए, महावीर स्वामी हुए और मांजीजी हुए । उन युव-पुरवों ने कहा कम किया क्वादा और इसलिए जनता ने—लोक-भावना ने उनको सद्य के स्वर्ग सिहासन पर प्रतिष्ठित किया और उनकी धर्चना की । धाज भी इन्सानियत जन पुष्प-पुरवों की स्मृति में कतकता का धर्म बढ़ा रही है । इसमें शक नहीं कि महान् सिद्धान्तों की धमृतमयी खुदू से भरे महान् धर्मों का इतिहास बहुत

मीरब-संज्ञित है। महाकाल के बिराट प्यासे में सहृदयते जीवन-सागर को महलों बरप मघने के बाह भावमी की दुनिया को संस्कृति वैसी दिव्य यण्डि धीर उन पण्डो के अनार्ई मोठी मिले हैं किन्तु हजारों बरप पहले से धात्र तप यह प्रस्त प्रस्त ही बना हुआ है कि सब्दों को सोक-मार्ग के दोनों बाहू बुझों की कठार की तरह कैसे लगाया जाये ? इसमें वा मत नहीं कि वे सम्ब लोक-जीवन का हिम्मा बनकर रहे किन्तु कैसे ? हां बताइये— कैसे ?

धनुषत-भान्जोक्तन के प्रवर्तक धाचार भी तुलसी ने एक परीक्षण युक्त किया है। धाचार भी तुलसी क तपोवन दिव्य मुनि भी मगराज को सम्पूर्ण भक्ति न धनुषत के भक्तियों की माला पिरोने में सजे हुए हैं। जहाँ तक हमने समझ है—धनुषती-संघ की स्थापना न धाचार्य भी की मजरिया यह है कि प्रत्येक धनुषती संघार धीर मूहस्व की मयाबाधों में रूढ़ता हुआ भी बीमे-बीमे निरखन निर्मल धीर सरल भाव से नम्रतापूर्वक चल कटा हुआ सत्य धीर धपरिग्रह के अति-वार मार्ग का पालन हाने की योग्यता प्राप्त कर सके। इसीलिए धामय धण्डो-संघ क नियमों का मुक्ति के कृष्ण मर्म की भक्तियों से रहित रखा गया है। ऐसा कि जिसे साधारणजम ग्रहण कर सके। सांसारिक परिस्थितियों की सीमा के इस स्वीकार में हमें धाचार्य भी के व्यावहारिक अनुमन का उदार दृष्टिकोण साफ दिखाने देना। धाचार्य भी का कहना है कि धात्र व्यक्ति धीर समाज के जीवन में अत्यन्त, अनैतिकता धीर भिन्न का बहुत धारा कोसबाला हो गया। स्वार्थ धीर परिग्रह न धनुषरा बुरी तरह फैल चुका है। उसने बाल सभी सम्भव होया जब कि व्यक्ति धाचार धीर नैतिकता की रोगनी से जीवन को व्ययम करे।

धाचार्य भी को कहीं सम्येह नहीं। सकलता धीर असकलता की निगाह से के कर्म को मापना भी नहीं चाहते। क्योंकि वे स्थिरधी धीर बीठरणी हैं कर्म निष्कामधया उनका स्वभाव बन चुकी है। लेकिन हमारी मान्यता यह है कि धाचार्य भी की धपरिग्रह की धनीस उन सबके लिए है जिनके पास परिग्रह है—संग्रह का कभी न खरम होने वाला भण्डार है। जहाँ तक धाचार्य भी का धपना साम्बुद्ध है उनका धपना धुषमनामा साफ है। जो मनवान् महावीर ने कहा

घोर धर्म विद्यने चिन्तों हमारे सामने जो गांधीजी ने कहा एवं किया वही तो धार्मिक धर्म तुम्हारी चाहते हैं। गांधीजी की स्पष्ट चाह थी कि उनके करोड़पति सिध्द सही मायने में दृस्टी बनें। धार्मिक धर्म चाहते हैं कि अधरिपही बनने का प्रयत्न करें अधुवृत्ती के मा धार्मिक ठीक करें। लेकिन इन प्रयत्नों का परिणाम शीकात बाला है। कितने गांधीवादी बन-कुदर दृस्टी हुए? सर्वोदय के सारनाम में कितने साधक धाम धार्मिक के उदय की भाषा में सोच सके? मयदान् बुद्ध से लेकर धाम तक के धार्मिकवादी प्रयोगों ने बहुजन हिताय के सत्य की कितनी मंजिम ली थी? धोपण कितना कम हुआ और विपमता कितनी पटी? धार्मिकवादी बनना चाहते कि सिध्दान्तों की पूर्णता का क्या अपराध अधुवृत्ती के सिध्द राह-मुक्ति पर बितना बमना चाहिए जैसे नहीं। तो फिर उन सिध्दान्तों की इन्द्रबनुपी-बहार काम क बजाय सोमा की बीज क्या है, यह कहा जाए तो गायब नहीं होना चाहिए।

अधुवृत्त मिते, मिठाचार की हवा अधिकाधिक सोच-प्रिय हो सबका या अधिकाधिक का अधरि स्फुटिकाम हो विपमता नष्ट हो और धार्मिक एवं समाज के बीच धार्मिक हिंसा भावना कम हो तथा उसकी जगह प्रेम सम्भावना सह योग और पारस्परिक सहायता की प्रवृत्तियां फेरी इसे कौन नहीं चाहेगा? किन्तु धार्मिक की सतह पर किया गया धार्मिक धर्म तुम्हारी का अधुवृत्त-धाम्बोलन प्रयोग मानवमान के सामने धर्म के बीज के रूप में अस्थित है। धार्मिक धर्म अधुवृत्त धर्म के अधरि राहगीर हैं उनके धार्मिक में तीव्रता से रोप निर्ममता और धार्मिक जैसी कोई अधिकाधिक अधरि नहीं हो सकती तो भी हमारा निश्चित मत है कि धार्मिक धर्म की तुलना अपनी मुकुत और प्रिय मुनिभाषा में उसके प्रति है कि वे अधरिवादी न करें और अधुवृत्त अधरिवादी की तरह मुक्ताधिक न हों। क्या धर्म है इन नियमों का? यही कि मनुष्य ही धर्म ही या पांच ही के बने देकर रमाय और तपस्या की धर्म परम्परा जैसे सुबर्ण-अधिक अधुवृत्त सिध्दान्तों को पालन करने का धर्म करने के बजाय मुनि कुस के उन तपपूत धर्मों को जोड़ा-बहुत जीवन में उतारने का धर्म प्रयत्न करें। धार्मिक स्वाधि-पालन करेया या ध्यासा बीठा रहेया। अधरि की ज्योति

बाहिए—सत्य के स्फूर्तिमय बाहियों। ऋषि-परिपाटी और महावीर कुल के आचार्य भी तुमही जैसे मट्ट सिपियों को सत्य-धर्म का विद्युत् स्टेशन बाहिए। युग का कच्चा पकड़कर पूरा मोड़ दे सकने की क्षमता रखने बाध मर्य और अपरिग्रह जैसे सिद्धांतों को जन जन तक पहुंचा देने के लिए जितना धनबल अभ्यवसाय जितनी अद्विज तपस्या जितनी निर्माण-श्रान्ति और कितना हिमासय जैसा धैर्य बाहिए, इसे बताने की जरूरत नहीं।

जोधपुर के अलुअत-सम्मेलन में हमने आचार्य भी का बहुमहासन्देश मुना जिसमें उन्होंने अधुवतियों को समय का महासन्देश दिया। कीज हो सजता है निर्मम ? वही जो सब तरह के अपराध से धूम्य हो जो लौम्य व कामजीत होकर सब तरह के आकर्षक सामग्री को परामूल कर सके धीर जिसे पार के मरिद मृत्यु मुमा न सके। समय वही हो सकता है जो धान्य धीर व्रत का माने आनाम्बुषि के विरुद्ध नीरति का एक हिम्मा खूब हो चुका हो। अस्तु 'स्व' की समस्त सीमाओं को तोड़कर धनन्त ब्रह्माण्ड का धाम बंसे हो ? कहने से नहीं मयाठार करने से समय के उस आध्यात्मिक स्वरूप की बात जाने कीजिय धनर धन को अलुअती करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इतना भी नरे कि उसे ठरकारी कागून न्य डर न रहे बहु रिखत न ब धीर न स धोरवाजाटी न नरे, अनुचित रूपसे धनोपार्जन न करे तथा धामन के नैतिक कोड का ईमानदारी से पालन करता रहे तो भी बहुत बड़ा काम हो। किन्तु यहां भी प्रश्न करने का है। धांधली ने इसी तरह के स्नेहघा में बने सत्यासहियों की कल्पना की थी।

आचार्य भी स्वयं कहते हैं कि उन्हें संस्था का मोह नहीं। वे क्वालिटी चाहते हैं। सोना धीर सो टच का मोना। क्या हम धारा करें कि अलुअती अपने हृदयों की निओरियों में स्वर्ण-मणि-मुक्ता के बजाय अलुअती गंध के नियमों की स्वर्णीय रत्न-राशि को करने की लक्षियों में विरोधकर मजाना मुल कंगे ? आचार्य भी अपने पक्ष पर बदे जा रहे हैं इजना उनका स्वभाव नहीं धरना उन्हेंने जाना नहीं। उनकी मजिल निरिचत है मार्ग स्पष्ट है कहीं बुधिया

नहीं घीर न संशय । समी जाहेंये कि भाषाय थी हाथ युक्त क्रिया गया लोक-
हिताय प्रयोग सफल हो—इन महायज्ञ में सब अपना-अपना योग दें । मानवता
परीक्षण पर परीक्षण किस जा रही है । मायब इन तरह क वैदिक महायज्ञ
गोपण घीर विपमता की समाप्ति के बाद के परिष्कृत हैं । भाषाय थी जेने
व्यक्तिगत ज्ञान जाने युव के प्रतीक हैं ।



अणुव्रत और भूदान

—सुधी सुधारामी मोक्षिनी

अणुव्रत और भूदान आन्दोलन दोनों की ज्ञानिकारी विचारधाराओं अपने अपने दृष्टिकोण से एक ही सामाजिक और धार्मिक अर्थ का प्रतिपादन कर रही हैं। दोनों का मार्ग और दोनों की साधना व दोनों की संज्ञा एक ही मनो-बैज्ञानिक और दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है। दोनों मानवीय आन्तरिक विकास की यात्री को आगे बढ़ाने में रेत की समानान्तर पट्टी के समान हुए गति से सहयोग दे रही हैं। अणुव्रत बुद्धि के द्वारा हृदय के परिष्कार पर बल देता है तो भूदानयज्ञ हृदय में स्नेह की छवि प्रवाहित करके मानव के अविच्छिन्न सम्बन्धों को दृढ़ करने के सफल प्रयास में है।

अणुव्रत और भूदान दोनों पर विचार करने से ज्ञात हो जायेगा कि अणुव्रत का अवतरण हो रहा है, तो भूदान का आरोहण। एक प्रकार कल्पना के आकाश से नीचे उतर रहा है। अस्मत्त से प्रस्फुटित होकर जब वितरित विरल में व्याप्त स्वार्थमय अन्धकार के विनाश के लिए आन्तरिक मानवीय विध्याकाश से ऐसे ही किन्तने प्रदीप्त प्रकाशों का आविर्भाव हुआ करेगा और उन सभी नवीन प्रकाशों के सम्मिलन से जो एक विरलव्यापी असीमित दिव्य-अकाश संसार के अणु-अणु में प्रकृति के अणु-अणु में व्याप्त हो जाएगा तो सारे संसार से कुछ मुसीबत, जल-कपट, बोधा मत्कर्मों के रज का राजम समाप्त होकर मुक्त-शान्ति और आनन्द का वातावरण उत्पन्न हो जाएगा। अणुव्रत और भूदान दोनों ही मानव की प्रमुक्त शक्तियों को स्वर्ध करते हैं। दोनों का ही मूलाधार मीतिक न होकर धर्मीतिक है। दोनों की एक सुनिश्चित कल्पना और नुरद्व आत्मा है। दोनों सत्य अहिंसा प्रेम को मानव के विकास का एकमात्र साधन स्वीकार करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि एक धीतिक-स्तर

से अमीतिकी की ओर और दूसरा अमीतिकी सीमा से व्यावहारिक मौलिकता की ओर बढ़ रहा है। मानवीय विकास के लिए इन दोनों गतियों का अवतरण और आरोहण आवश्यकमात्री है।

जब तक इन दोनों तरह की गतियों का समन्वय होकर मानवी विकास की परम्परा सम्पारित नहीं की जाएगी तब तक उसका विकास एकात्री ही रहगा। चाहे व्यक्ति का व्यक्तिगत सीमा के भीतर प्रसीमित विकास हो प्रथमा समाज का विस्तृत क्षेत्र में सीमित विकास। दोनों की साधना सीमित व्यक्तिगत प्रसीमित धर्म से मोक्ष की ओर ही से जाती है। विकास की परम्परा को स्वीकार किये बिना साधना के द्वारा विश्व की व उसके प्रथमों के विकास की सम्मानना ही नहीं रह जाती और जब हम एक बार विकास की परम्परा स्वीकार कर लेते हैं ता फिर हमें विकास के द्वारा देवत्व और स्वर्ग के अवतरण की कल्पना के इस पृथ्वी पर साकार होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता है। कुछ लोगों का यह भ्रम है कि 'विकास के साथ ज्ञान भी तो लगा रहेगा' इस स्थल पर कोई महत्त्व नहीं रखता। वास्तव में विकास के साथ ज्ञान मया रहने वाला सिद्धान्त प्रमणीय है। विकास से जो कमी-कमी ज्ञान के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं, व विकास में रह गई किसी कमी के परिणाम मात्र हैं। विकास का प्रभाव ही ज्ञान है व कि विकास के प्रतिरिक्त उसकी कोई गति है। स्थायित्व की संज्ञा का नाम ही वका दुष्प्र विकास है। अनुभव और ध्यानमय इसी विकास की उत्तरोत्तर सृष्टि के सिद्धान्तों को जीवन में प्रयुक्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील है, चाहे दोनों भिन्न-भिन्न संस्थाओं के द्वारा संचालित हो रहे हों पर वास्तव में दोनों एक दूसरे से प्रमिल हैं। यह बात प्रत्येक मायक के अनुभव में आती है।

अनुभव और ध्यान दोनों एक ही सङ्कल्प के दो प्रमिल पार्श्व हैं। दोनों का उद्देश्य सोपानबिहीन समाज की स्थापना करना है। दोनों धार्मिकता की विचारधारा के व्यक्तियों के साथ उसके प्रथमों का महान् धार्मिक त्याग सम्मिलित है। दोनों का प्रभाव अधिकतम त्याग और पवित्रता तथा अतोपासनायें हैं। दोनों मौलिक स्मृति को जीवन में व्यक्तिगत रूप से स्वीकार करने के पक्ष में

सही है। अपितु बिस्व को अधिक से अधिक भौतिक सुविधाओं से समृद्ध बनाना चाहते हैं। साथ हीवन धोर उच्च विचार, यही वो सिद्धान्त इन मान्योमनों के प्राण है। मानस को शुद्ध व पवित्र करने के लिये तिरस्कृत व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति और प्रेम की उद्भावनाओं का उत्पन्न होना और अपनी स्नेहमयी धारा में उन्हें निमग्न कर लेने की प्रबल उरकृष्ठा संजोये रखना प्रति आवश्यक है। पूजा का उपचार पूणा करन से मा तिरस्कृत का उपचार तिरस्कार पसना बहिष्कार करने से नहीं होगा। उनके साथ हमें अपने हृदय की समृद्ध-मयीधारा को सम्मिलित करना होगा। हमसे जो पूणा करते हैं, उन्हें भी हमें अपने हृदय का स्नेह देना होगा। पूंजीवाद और भौतिक साम्यवाद दोनों ही मानवी विकास में बाधक हैं। साम्ययोग प्रेमयोग और सहिसाधत ही मानवी विकास के मार्ग हैं। यद्यपि मनुष्य जाति को विकास की कठिनतम बाटियों और विकटतर पहाड़ियां में से होकर गुजरना पड़ेगा पर सापकों को कमर कस कर हर प्रकार का भ्रम्य बुझान के लिए तैयार रहना होगा।

हम हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में विश्वास रखते हैं। हम किसी ऐसे स्थायी अङ्गुण का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते जिसको पुण की प्रक्रिया में रूपान्तरित न किया जा सके। बिस्व के वर्तमान संघर्ष में विचार भेद ही मुख्य कारण है। अगर हम प्राथमिक विचारधारा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान ममाज-अस्याण के प्रति व मानव विकास की साधना के प्रति आकर्षित कर सकें वा कोई कारण नहीं कि धाज का धार्तनवाद समूह मट्ट न हो जावे धार्तक और मय से धाजान्त बातावरण बिस्व को समिष्ठ सन्देश न दे सके। प्राथमिक विचारधारा का वा अस्तित्व अस्तुबत व भ्रमान में लुका है उतै नैतिजता का विकास होगा। धाज देम के हर विचारधाम् को इन क्षेत्र में धाये धाकर नार्थ करने की अरम्यत आवश्यकता है। हम हर ऐसे व्यक्ति का जो इन क्षेत्र में धाना चाहें हृदय से धात्मा से स्वागत करते हैं।

एक महस्वपूरा आम्बोसन

—भी शंकरलाल वर्मा

तात्कालीन सह-सम्पादक, हिन्दुस्तान

मागिराज भीष्मपुत्र ने व्यामोहयुक्त धर्मों को उद्घोषण करते हुए एक स्थान पर कहा था—

यथा यथा हि धर्मस्य यत्नानिर्धयति मारुत ।

अनुत्पन्नानयमस्य तदात्मानं सुखाम्यहम् ।

परिब्राज्याय साधूनां विनाशाय च कुम्भस्ताम्

धर्मं संस्थापनार्थमि सम्मन्वामि युने युने ॥

उनके इस कथन की बध-विवेक के इतिहास से पग-पग पर पुष्टि होती है। बृह महावीर, शंकर, मुहम्मद ईसा स्वामी रामबाबू बुध नानक स्वामी दयानन्द सरस्वती और अपनी भाषों के सामने महात्मा गांधी इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इनके अवतरण काल में देश में व्याप्त विद्वत् परिस्थितियों और उनके निवारण के लिए हुए इनके कार्यकलाप इसकी यथार्थता के प्रकट प्रतीक हैं। इसमें भी बढ़कर है इनके अवतरण की शृङ्खला। हिंसा के भयंकर व्यापार के समय बड़ और महावीर का नास्तिकता के प्रवाह के समय में शंकर का सामाजिक पतन की परिचीमा पर मुहम्मद का ब्रूहा के साम्राज्यकाल में ईसा का यवनों के पणकण्डा काल में स्वामी रामबाबू और बुध नानक का भारतीय संस्कृति पर पादचार्य संस्कृति के भयंकर आक्रमणकाल में ऋषि दयानन्द का और वासता क धर्मिष्ठापनय अतुदिक पतन-काल में महात्मा गांधी का अवतरण ऐसी बटनार्ण हैं जो प्रकृति की सुयोचित योजना का धर्म प्रतीक होती है।

महापुरवों की शृङ्खला की कड़ी के रूप में आज एक और धार्मिक विरोधा और दूसरी ओर वैनाचार्य तुमसी हमारे सामने विद्यमान हैं। महात्मा गांधी ने

अपनी तपस्सा एवं सत्य और अहिंसा के बल से देश को इस्लाम के बन्धन से मुक्त कराया किन्तु खोपण और अहिंसा के प्रतिपादन से मुक्ति रिहाकर रामराज्य स्थापित करने की अपनी कल्पना को वे साकार रूप नहीं दे पाये। उनके धर्म के सूत्र इस काम की धारणा बिना ने भूदान के रूप में अपने हाथ में लेकर उसकी पूर्ति करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी है। जिस समय महात्मा गांधी ने ब्रिटिशों के भ्रष्ट शासन से नमक बनाकर अहिंसावादी ब्रिटिश शासन की सत्ता को चुनौती दी थी तो लोगों ने इसका मजाक उड़ाया था। लेकिन हम आज देख रहे हैं कि ब्रिटिश शासन बड़ा ही नायब है और मजाक उड़ाने वाले स्वयं मजाक के सिकार बन गये हैं। इसी प्रकार धारणा बिना के भूदान की कल्पना को लोगों ने एक लम्बा धर्मव्यवहारिक कल्पना की मंजा दी थी लेकिन वह धर्मव्यवहारिक कल्पना आज जिस प्रकार साजरा रूप धारण कर रही है और देश का सारा आठाबरण आज भूदान के साथ ही सम्पत्तिदान रूपान्तरण और अन्वयान्तरण के लिए जिस प्रकार व्याप्त हो रहा है उनमें उनके महम की पूर्ति में अंका की कोई मंजायस नहीं रह जाती।

दूसरी ओर इसी के समानान्तर धारणा भी दुलसी का नैतिक उद्धार का प्रारम्भ है। "वैद्यकि हम आज व हो गये हैं, किन्तु सदियों की शान्ति और अहिंसा भी बढ़कर पिछले महामुद्रा धर्म परिस्थितियों से देश में धर्मव्यवहार का इतना जोर बढ़ गया है कि कोई भी शोक पैदा नहीं है जो हमसे दबा हो। आज लोगों के लिए देश ही परमेश्वर हो गया है। उसके लिए अन्वय में अन्वय अन्वय करना एक धारणा-सौ बात हो गई है। सरकारी बस्तियों में मामूली से मामूली कान बिना रिश्तत बिने पूरा नहीं हो पाता। सेने वालों के मन में तो इसका कोई अर्थ ही नहीं। देने वाले भी इसके अन्वयों के अन्वय एक सामान्य चीज मानने लग गये हैं और हमारी सरकार के अन्वयान्तरण के प्रयत्नों को अहिंसा नहीं मिल पा रही है। जो बात सरकारी विधानों में है वही सामान्य व्यापार-व्यवसाय में है। देश में किसी भी चीज का मुद्रा रूप में मिलना अन्वय प्राप्त हो गया है। और तो और खोपण जैसी चीजों में भी अन्वयान्तरण कर लोगों के जीवन के साथ अन्वयान्तरण करने में उनकी अहिंसावादी

नहीं होती। पहले प्रायः सहर ही बुराईयों का केन्द्र मान जाते थे किन्तु अब से गांव भी इनसे घसूटे नहीं बचे हैं। सीधी सीधी ग्रामीण महिमाएं तक जमाये हुए तेल (बनस्पति) को बूध के साथ जमाकर उसे सुदृढ़ भी के रूप में परिवर्तित करने में इतनी निपुण हो गई है कि उस भी का सुदृढ़-असुदृढ़ की जांच के लिए बनी मशीनों की पकड़ में आना भी कठिन हो जाता है। इस सर्वथा धार्मिक व्यापार को वे इनने निरंतर भाव से करती है कि उसमें निहित धार्मिकता का उनके हृदय को जरा भी आभास नहीं होता। यह व्यवस्था आज सभी क्षेत्रों में है और हालत भी अत्यन्त चिन्तनीय है।

जब तक किसी व्यक्ति में बुराई का बुराई मानने की चेतना बनी रहती है तब तक उससे यह भासा रहती है कि अपनी कमजोरी पर हावी होते ही उन बुराई से वह अपना पीछा छुड़ा देगा। लेकिन जब असत् को असत् मानने की भावना ही मूल्य हो जाये तो वह एक अयावह स्थिति हो जाती है। उसमें उसके चरार की सम्भावना गप्ट प्रायः हो जाती है। दुर्भाग्य से नैतिकता की दृष्टि से आज हमारे समाज की बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति है। कोई भी राष्ट्र जिसकी नैतिक आधार सिमा कमजोर हो अन्य क्षेत्रों में कितनी भी उन्नति करन पर अत्यन्त वह टिक नहीं सकता। ऐसी बसा में देश में नैतिकता की भावना जागृत कर इसको अपने जीवन में व्यवहृत करने के लिए प्रारम्भ किए गए आचार्य पी तुलसी के इस अस्तुत्त-आन्दोलन का भारी महत्त्व है। आचार्य भी के बहु संक्षयक अनुयायी देश भर में फैसकर विविध क्षेत्रों में इस आन्दोलन का प्रचार कर रहे हैं और उसमें उन्हें काफी सफलता भी मिस रही बताई जाती है किन्तु वह प्रचार अब भी बहुत सीमित है। अपने देश के नैतिक उन्नयन में बिस्वास रखने वाले देश के प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति को बिना किसी जाति एवं धर्म के भेद भाव के इस आन्दोलन को अपनाकर उसकी पूर्ति में योग देना अपना पुरीत कर्तव्य समझना चाहिए, तभी वह व्यापक रूप धारण कर सकेगा और तभी उसकी सदय-सिद्धि सम्भव हो सकेगी।

सामाजिक प्रगति में बतों का महत्त्व

—श्री हरिनाथ जगन्नाथ
बिलसंबी राजस्थान

आज केस में सबसे बड़ी आवश्यकता दो बातों की है। सबसे प्रथम तो प्रत्येक नागरिक के जीवन-स्तर तथा समाज में फैली धार्मिक विपयता में समानता लाने की और दूसरी—मनुष्य और समाज का निर्मूल नैतिक सिद्धांतों के आधार पर करने की। आज के युग में बहुत से लोगों की यह भावना है कि समाज की रचना को प्रभावित करने वाली धर्म-शक्ति है और वह महान् है। इसलिए मानव जाति का इतिहास देखने से प्रतीत होता है कि मानव को मोड़ने में धार्मिक शक्तियों ने बहुत भूमिका निभाई है किन्तु मानव के मूल में सुख की भावना प्रबल है और ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है। वास्तविक सुख अपने जीवन के सुख में नहीं। वह तो दूसरों की सुख तथा एवं साधना में निहित है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर दूसरों के हित साधन में ही मेरा हित है यह नमस्ते की जो मनोवृत्ति है यही नैतिकता है।

दो व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध को स्थिर करने वाली प्रणाली का नाम नीति है। नीति और नैतिकता दोनों ही समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्हीं की पूर्ति के लिए समाज में बतों का विकास हुआ है।

बत का अभिप्राय है कि हम किसी बुराई से बुर रई और ज्ञान के लिए बतों को अपने जीवन में अपनाते हैं। यह बात भी निर्विवाद सत्य है कि बतों एवं नियमों के बिना समाज का जीवन चल नहीं सकता। बतों के द्वारा हमारे जीवन की सुविधा होती है। अनुभव साम्योक्त के बतों के आधार पर हम प्रतिभास तथा प्रति मत्वाह अपने जीवन के सम्बन्ध में विचार करें कि इन दिनों में हमारा जीवन कितना धार्य बढ़ा है। बतों से हमारे जीवन में यदि

कोई प्रमाण नहीं पड़ता तो उस प्रकार के वरत लेने से कोई साम नहीं। प्रतिबन्ध प्रकृति सोच-साज से लिए हुए वरतों का भी जीवन में कोई साम नहीं होता। इसलिये वरतों को अपनी इच्छा से ही ग्रहण करना चाहिए। दूसरों पर प्रभाव डालकर किसी से कोई कार्य पूरा करना ही हिंसा है। इसी कारण हिंसा को कुछ मानते हैं। इसलिये सत्य और अहिंसा के आधार पर वरतों को रकता से पालन करते हुए माने बड़ें। ये वरत हमारी भारत के विकास के साथ-साथ समाज की भी वृद्धि और प्रगति करते हैं इसी भावना के साथ इन वरतों को हम निमाएँ।

प्रायः के युग में नैतिकता चारों ओर फैल रही है। ऐसे समय में यदि धर्म का प्रायश्च ठेका नहीं रखा गया तो जीवन ठीक रूप में नहीं चल सकेगा। नैतिकता के माने हैं व्यक्ति जिस तरह अपने सुख और स्वार्थ को सोचता है दूसरों का भी सोचे। ऐसा होने से शोषण उत्पीड़न आदि स्वतः मिट जाते हैं। स्वराज्य होना पर कई प्रकार के प्रलोभन भी हमारे सामने आए, नैतिक दृष्टि से अराधियाँ भी आईं अनुभव-आन्दोलन की भावना यह है कि इन छोटे-छोटे वरतों द्वारा इनका उन्मूलन किया जाए। दूसरे के सुख और स्वार्थ का क्या लन करने की भावना हिंसा है। इसलिये व्यक्ति दूसरे के सुख और स्वार्थ को भी देखे। सचमुच जिस किसी महापुरुष के मन में यह कल्पना आई होगी वास्तव में वह बड़ा महान् रहा होगा। कब आई, किसके आई, यह हम नहीं जानते। मगवान् महावीर जन्में से एक के जिन्होंने इसे प्रागे बढ़ाया। मैं अब अहिंसा का विचार करता हूँ तो इससे बड़ा उपकृत होता हूँ पर जन समाज और जैन धर्मियों ने अहिंसा का जो रूप अपनाया वह अहिंसा महावीर की अहिंसा नहीं रही उसमें जीव-वधा का प्राधान्य रहा। महावीर की अहिंसा में निर्मयता का भाव था। मारने की जगह उसमें मरने का भाव अधिक था क्योंकि वह केवल वीर की ही नहीं थी महावीर की थी। बहुत बड़ा निररपण उसके पीछे था। प्रायः वह निर्मय भाव क्षिय-सा गया है। उसे प्रकट कर दीजिए। यह भावना जमाइये समाज में जिन समस्याओं को मारकर हल करना चाहते हैं, अकृत पड़े तो उसके लिए मर भी सकें। मैं इसे ही निर्मय कहूँ। सत्य

अपरिग्रह भावित पत इससे जुड़े हुए हैं। परिग्रह या मन, जो किसी के पान है वास्तव में उस प्रकृति के द्वारा पैदा किया हुआ है यह कदापि नहीं। उसमें तो न जाने समाज के कितने व्यक्तियों का परोक्ष-अपरोक्ष योग रहा है। इसलिए व्यक्ति के प्रकृति के परिभ्रम का फल है ही नहीं। अपरिग्रह की स्थापना की तरफ भी व्यक्ति को ध्यान देना है। जिस ठेकी से समाज का स्तर विषय धीर-क्लेश पूर्वक बनता जा रहा है इससे सगठा है, समाज कहीं भस्मीभूत न हो जाये। इससे बचने के लिए अपरिग्रह का सहारा लेना होगा। इस विषयता धीर-असम्भ्रम की बँतारणी को पार करने के लिए हिन्दू-शास्त्रों के अर्थ के अनुसार अपरिग्रह गाय की पूँज के समान है। यदि उसकी पूँज की मजबूती से पचड़ से तो निरन्ध्र ही उसका पार पा सकेंगे।

यह युग राजनतिक आयुति धीर-धार्मिक तथा सामाजिक समानता का युग है। जनतंत्र की मानना व्यो व्यो बढ़ती धीर-फैलती जा रही है स्वो-रयां राज-तंत्र-युग के मुख्य अयमने जा रहे हैं धीर-सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति में अंतर पड़ता जा रहा है। पहले जहाँ जीवन के प्रायः प्रत्येक त्राग न वर्षीकरण पर जोर दिया जाता था धीर-उसके आधार पर समाज-रचना की गई थी बड़ी धन-वर्ष धीर-भेद-विहीनता पर जोर दिया जाता है धीर-भोग्यता धीर-अंध-मौखता पर नहीं बल्कि समता के आधार पर समाज-रचना की धीर-प्रवृत्ति बढ़ रही है। पहले वस्तु छोड़े भोगों तक ही सीमित रहती थी तो उसका युग धीर-अच्छा पराकाष्ठा पर पहुँच जाती थी। जब बहुजन समाज में उसका विस्तार की धीर-प्रवृत्ति होती है तो गुण-भोग्यता धीर-अच्छा की धीर-ध्यान हट जाता है धीर-विस्तार की तरफ जाता है। इस समय हमारे देश में ऐसा ही हो रहा है। बहुजन समाज को मुक्त सुविधा पहुँचाने की युग धीर-सामाजिक एवं धार्मिक समता की धीर-तीव्र गति से प्रयास करने के धीर-अभितन्त्र तथा सामाजिक धीर-ध्यान की धीर-ध्यान कम जा रहा है धीर-हम देखने हैं कि इस तरीके में हमारे देश धीर-समाज का धीर-अन्तर-धार्मिक मोचा हो गया है। इसकी धीर-जिन-दोनों धीर-परम के नेताओं का ध्यान है उनमें धीर-अन्तर-धार्मिक का भी अंधा स्थान है। वे एक-अन्तर-धार्मिक के आधार हैं फिर

अहिंसा प्रेमी दृष्टिकोण से विद्यालय और सहानुभूति व्यापक है जो कि एक अहिंसा प्रेमी के लिए सर्वथा योग्य है। प्रभुवती संघ की स्थापना करके उन्होंने यह शिक्षा दिया है कि वे केवल वैन समाज के ही नहीं बल्कि सारे हिन्दू समाज और मानव-समाज के हितधी हैं। प्रवाह और हवा का एक बैलकर चलना और सस्ती बाह्याही नना भाषाण है मगर प्रवाह और हवा को अभीष्ट विद्या में मोड़ना महान व कठिन कार्य है। जो ऐसे कठिन कार्य करते हैं, वे ही युग-नेता होते और कहलाते हैं। आचार्य भी में हम बुग-नेता की भूमक देख रहे हैं। उनका यह कार्य दूसरे सम्प्रदायों के आचार्य के लिए भी ध्यान देने योग्य है।



अणुव्रत समाज शुद्धि का आन्दोलन

—श्री शोभाशाल मुक्त

सह सम्पादक हिन्दुस्तान

काल प्रवाह के साथ समाज में अनेक बुराइयाँ प्रचलित हो जाती हैं। प्रत्येक युग में इन बुराइयों से समाज को मुक्त करने का प्रयत्न होता आया है। समाज संशोधन का यह कार्य निरन्तर चलते रहना चाहिए, अन्यथा समाज में विषमता अस्पष्टता अज्ञान और मझम पैदा हो जायेगी उसकी प्रवृत्ति का मार्ग बदलना ही पड़ेगा।

समाज व्यक्तियों से मिलकर बनता है और इसलिए अगर समाज का संशोधन मनोचिन्त हो तो उसकी शुरुआत व्यक्तियों से ही होनी चाहिए। व्यक्ति समाज में रहता है और प्रत्येक व्यक्ति का आचरण किसी न किसी रूप से समाज को प्रभावित करता है। व्यक्ति समाज में रहते हुए स्वच्छतावादी जीवन नहीं बिता सकता। उसका अपना व्यक्तिगत आचरण इस प्रकार नियमित करना चाहिए, जिससे समाज का अहित न हो।

व्यक्ति और समाज अमिन्न हैं। एक दूसरे के हितों में और प्रवृत्ति विरोध नहीं है। क्या व्यक्ति को समाज की विन्यास में अपने को मूल जाना चाहिए, यह प्रश्न ही नहीं उठता। व्यक्ति का विकास बांछनीय है किन्तु उसके लिए सामाजिक नियमों का पालन करना होगा। अनुकूल सामाजिक वातावरण में ही व्यक्ति का विकास सरलतापूर्वक सम्भव हो सकेगा। इसलिए व्यक्ति का आत्म-विकास के लिए ही सामाजिक वातावरण को अच्छा बनाने में मार्ग देना चाहिए।

हमारे पूर्वजों में मरुते विरल और अनुशीलन से बाह्य अनुभव के आचार के लिए कुछ मूलमूल नियम निर्धारित किये हैं। ये नियम भारतीय संस्कृति के

मूल आधार हैं। इस देश में सधियों से मनुष्य जाति को यह पाठ सिखाया जाता रहा है कि उसे अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करना चाहिए। भारत की भूमि में जितने भी भ्रम पतप हैं उन सबने इन मूलमूल सिद्धान्तों पर बस दिया है। उनका अनुसरण व्यक्ति और समाज दोनों के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

किन्तु इन नियमों का पालन आसान नहीं है। यह आत्म की बार पर चलने जैसा है। अहिंसा का पालन करने वाला मनुष्य मांस के प्रति ही नहीं बल्कि अस्वकार के सब जीवों के प्रति प्रेम और करुणा बरतेगा। वह राग और द्वेष से मुक्त होगा। सत्य बोलने से सामाजिक दृष्टि से हानि हो सकती है यह समझ कर भी वह सत्य का परिष्कार नहीं करेगा। वह दूसरे का मन हड़पने की चेष्टा नहीं करेगा। वह सामाजिक भ्रम-विमोह को जीवन का परम अक्षय नहीं समझेगा बल्कि संयम से काम लेगा। इन्द्रियों के बलीभूत न होकर उन्हें अपने बंध में रखेगा वह अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को सीमित रखेगा। धन-सम्पत्ति का एक जगह संकय दूसरी जगह अभाव की स्थिति उत्पन्न करता है। धनीता और गरीबी का एक साथ अस्तित्व वर्तमान अज्ञान का मूल कारण है और उसे अपरिग्रह की भावना से ही दूर किया जा सकता है। आवश्यकता से अधिक बस्तुओं का संग्रह भी एक प्रकार से सामाजिक बोरी की मानी जानी चाहिए। अतः समाज में इन नियमों पर चलने वाले लोग अधिक संख्या में हों तो इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग उत्पन्न हो सकता है।

तेरापन्थ के आचार्य श्री तुलसीदास के सम्मर्क में धार्मिक का मुक्त अन्तर्गत विभा है। उन्होंने अणुवत-आम्बोजन का सूत्रगत किया है जिसे मैं समाज-अंधोवन का ही एक रूप मानता हूँ। उन्होंने अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच मूलमूल सिद्धान्तों की आधारधिता पर अणुवत-आम्बोजन को अज्ञा किया है। उसके अन्तर्गत उन्होंने कुछ ऐसे नियम निर्धारित किये हैं, जिनके परिपालन से समाज और व्यक्ति के जीवन में नैतिकता और सहायार की वृद्धि होयी और राष्ट्र का गिरा हुआ अस्ति अंश उठेगा।

आचार्य श्री तुलसीदास ने धार्मिक की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए

धनुषत के नियमों को व्यवहारोपयोगी बनाने की चेष्टा की है। इसलिए उन्होंने इन नियमों को धनुषत धर्मत् लघु नियमों का नाम दिया है। किन्तु धनु में पवित्र का कितना स्रोत भरा हुआ है यह सधार जान चुका है। धनुषत विद्यने में भसे ही छोटे दिखाई दें किन्तु उनमें मनुष्य के जीवन और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की घसीम सम्भावनाएँ छिपी हैं। इसलिए धनुषत लघु है, वह समझकर किसी का उसका महत्व कम नहीं घोकना चाहिए।

धनुषत-मान्दोसन धात्र की घनेक सामाजिक बुराइयों पर प्रहार करता है। धात्र व्यापारिक क्षेत्र में कितना असत्य धनीति और भ्रष्टाचार प्रविष्ट हो गया है। डीक मूल्य पर कुछ वस्तु मिलना दुर्लभ हो गया है। रिस्वतखोरी और खोरबाजारी का बोलबाला है। मृत्युभोज श्हेत्र बाल और बूढ़-विबाह वैसी घनिष्टकारी सामाजिक कृटीतियाँ प्रचलित हैं। धराबखोरी कुशावाजी, तथीमी वस्तुओं का सेवन धारि दुर्भसन धर किये हुए है। धनुषत-मान्दोसन इन सब बुराइयों का निर्वेध करता है। वह छुमाभूत का समर्पन नहीं करता और स्वदेशी का पोषक है। इन सबके लिए प्रत्येक समझदार धात्रमी इस मान्दोसन का समर्पन करेगा।

इस मान्दोसन ने घनेक व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित किया है। उन्होंने धार्मिक हानि उठाकर भी धनुषतों का पासन किया है। धत का धर्म ही दृढ़ संकल्प होता है। जो शौर्य धर्म और नीति की सीधी रूह पर चलने का संकल्प करते हैं धुक में भसे ही उनकी संख्या बड़ी हो सकती है, किन्तु उनका जीवन दुखों के लिए प्रकाश का काम देता है। धन्त में उनकी धटा फलेपी-भूनेपी और यह बुनिया धात्र से धार्मिक धक्की बनकर रहेपी।



अणुव्रत आत्म विद्यालय का मुख्य द्वार

—श्री दयामप्रकाश शीशित

सम्पादक समाज

प्राज्ञ न केवल हमारा देश बल्कि सारा विश्व भौतिक सुखों की बौद्ध में सत्य की बिसकृत मूलता आरुहा है। व्रत हमारी भारतीय संस्कृति और परम्परा की बस्तु रखी है। हमने सदा व्रत का सम्बन्ध आत्मा से माना है और उस आत्मिक संकल्प को पूरा करने के लिए बड़े से बड़े त्याग किए हैं। प्राज्ञ हमारी संस्कृति बीभित है और उसका सारे विश्व में मान है। विदेशों के विचारक जब उसकी अमरता के रहस्य का खोजते हैं तो उन्हें मूल में हमारे आत्मिक संकल्प की हड़ता ही मिलती है। प्राज्ञ परिस्थितिबन्ध निराशा और भ्रमक मित्राणों का प्रचार हमें कुछ समय के लिए ऐसा अनुभव करने के लिए बाध्य करता है कि हम दुर्बल हैं बिबल हैं, व्रत प्राणे नहीं बढ़ सकते हैं। अणुव्रत हम उस परिस्थिति में एक मार्ग दिखाता है, हमें बल और प्राणा प्रदान करता है, ताकि हम अपने संकल्पों को अमूरा न छोड़ें बल्कि उनको पूरा करके जीवन के सत्य पर पहुँचें।

अणुव्रत की बात करने पर माचारणतया भोग दो प्रकार के उत्तर पते हैं। उनका कहना होता है कि वे अणुव्रत के अधिकार नियमों को अपने जीवन में उठार कुछ हैं और उनके आचरण में किसी भी नियम की अवहेलना नहीं होती है। उनके जीवन स्थापनीय हैं। हर एक को उनके स्पर्श करनी चाहिए, किन्तु व्रत के विचार से सूर्य उनका जीवन एक ऐसे दुर्य के समान है, जिसकी रक्षा के सभी साधन होते हुए परकोट न होने से जो न दुग ने खेड़ी में आ सकता है और न उन साधनों की रक्षा कर सकता है जो उनके जीवन से भी अधिक मूल्य रखत हैं। मनोबैमानिकों का कहना है कि संकल्प और व्रत

के बिना जीवन के आचार-विचार कभी भी बदल सकते हैं। कठोर व्रत को निष्ठा ही एक ऐसा कवच होता है जो परिस्थितियों के भ्रंशनाश से हमारी रक्षा करता है। इसलिए अणुव्रत के नियमों को व्रत के रूप में ही पालन करना आवश्यक होगा।

शुद्ध लोग इस प्रकार के भी मिलेंगे जो समझ बैठे हैं कि राजनीति में बड़ी जीवन का मिलना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है और आज राजनीति तो हर व्यक्ति की बाल रोटी बन गई है। ऐसे लोगों से हमारी केवल एक प्रार्थना है कि वे अपने देश के व विवेकों के बड़े राजनीतिज्ञों के जीवन पर दृष्टि डालें। हम देखेंगे कि अविभाजित राजनीतिज्ञों के जीवन में मांस मरिचा को हीय समझ है। उनके आचरणों की शुद्धता ने बाल की तरह उनके जीवन की रक्षा की है और जो जो क्रम धाये बढ़कर राज्य और अहिंसा को मानकर जैसे वे घमर हो चुके हैं। इमें पाव है जब राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने मुझ में सहयोग देने का निश्चय किया तो महात्मा गांधी ने उस संस्था से अपने को अलग कर लिया जिसे वे २५ वर्षों से अपने रक्त से सींचते आ रहे थे। उनके सिद्धान्तों की कीमत जितनी रक्षा करना वे अपना परम धर्म समझने के बिना किसी राग-द्वेष के वे कांग्रेस से अलग हुए, लेकिन जमसेवा में मरे रहे। आज हम उन्हें न केवल घमर मानते हैं बल्कि उन इनीयिनी विभूतियों में स्थान देते हैं जिनका मारा बिस्व अभी है। तो हम यह कहें कि राजनीति या व्यवसाय या कोई अन्य परिस्थितियाँ अणुव्रत से भ्रम नहीं खाती हैं, तो इगम हमारी अपनी ही कमजोरी है जिसे हम जान बूझकर प्रथम दे रहे हैं। यदि हमें आत्मा के विरुद्ध कोई काम करना पड़ता है तो हम समझें कि हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं रहा। जगके बार यदि हम यह सोचकर संतोष करना पाहें कि जनता की सेवा के लिए ही हमने जीवन व सिद्धान्तों के साथ समझौता किया है तो हम अपने को धोना दे रहे होंगे। हमारे से जनता की कोई सेवा नहीं हो सकती है, यदि हम धारणों को अपने अनुकूल बनाते हैं। अणुव्रत नियमों का पालन हर एक व्यक्ति कर सकता है चाहे वह धनी हो या गरीब व्यवसायी हो या रिनात राजनीतिज्ञ हो या अपने काम-बन्धे में ही मग्न रहने

बाला व्यस्त व्यक्ति। यह तो नैतिक जागृति का द्रव्य है। ऐसा कौन राजनीतिज्ञ या जनपति है जो नैतिक जागृति के बिना सुख और शान्ति की कल्पना करेगा।

नैतिक जागृति हमारी प्रमुख समस्या है। आज हर प्लेटफॉर्म पर रोटी कपड़े का मुख्य प्रश्न होता है। बेकारी का भी प्रश्न उसी से आचारित व सम्बन्धित है। लेकिन नैतिक जागृति की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भी उस विद्या में जो प्रयत्न किए जा रहे हैं वे समस्या को देखते हुए अपर्याप्त हैं। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि यदि हमारी नैतिक दशा में सुधार हो जाये तो फिर कोई बुरी समस्या नहीं रहेगी और इसी प्रकार यदि बिना के लोगों का नैतिक स्तर ऊँचा हो जाये तो फिर हमें मुझ की विभीषिका से हमेशा के लिए छुट्टी मिल जायेगी।

आज विश्व जिस भौतिक उन्नति की ओर तीव्र गति से बढ़ा जा रहा है उसने भारतवर्ष को भी उसी होड़ में बसीट रखा है। लेकिन हम यह न भूल जायें कि भौतिक उन्नति वास्तविक शान्ति व सुख नहीं है। वह तो आत्मिक उन्नति में ही है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम कर्मव्यवहार जायें लेकिन इसका यह अर्थ आवश्यक है कि हम सरय को तिलाञ्जलि देकर मानवता की अस्थिर मरम पर कर्मव्यवस्था के नुरय का डोंग न करें। फूट बोलकर, औरबाजारी करके सारों की सम्पति इकट्ठी करके कोई व्यक्ति अपनी कर्मव्यवस्था का धारण उपस्थित नहीं कर सकता है। उससे अज्ञान तो बह है जो सचाई और ईमानदारी से रोज केवल चार पैसे ही कमाता है और कभी-कभी बह भी नहीं। इसी प्रकार किसी देश की उन्नति और समृद्धि इस बात से प्रकट व प्रमाणित नहीं होती है कि उसके पास कितने सहस्र विद्यालयों और बमबर्षक हैं या कितनी मंत्रियों के मकानों में बहाँ की जनता रह रही है। मन्दन में जसपान, ग्युवाक में बोपहर का भोजन और पेरिस में बिभाम, समृद्धि के कारण नहीं हैं क्योंकि सृष्टि की विद्यालयता और गति को देखते हुए यह गति—गति नहीं मानी जा सकती है। उष्णी उन्नति व समृद्धि तो इस बात में है कि हम अपनी इच्छाओं और कामनाओं पर नियंत्रण रखने में कहाँ तक सफल हुए हैं।

यह समझ लेने के बाद हम अनुव्रत का चमत्कार खिताई पढ़ता है। प्राचायं धौतुमसी न इत्तं घान्धोसत्तं ना धीगलेखं कर इये जो प्रति प्रयत्न की है उसकी नाप-तीस संस्था या शेष से नहीं की जा सकती है। पिछले छः ठाम में धर्मनिकता की गहरी निद्रा में सोनेबासों में से कितने जाग और कितनों न अपना जीवन बनाया इसका निराला-बोला करना कठिन है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हम जिस अवकार में पिरे हुए थे उसमें अनुव्रत एक प्रकाश व्याप्ति बन कर आया और उसने न केवल वैद्यवासियों की बल्कि विद्वानों के लोगों को भी आकर्षित किया और अब वे भी सोचने लगे हैं कि क्यों न उनका यहाँ भी इसका प्रयोग किया जाए। अनुव्रत के साथ अहिंसा प्रचीर्य ब्रह्मचर्य और अपरिव्रह्म के नियमों में हम विश्व के तमाम वर्तनों की विभिन्नताओं के अन्तर छिपी रहने वाली एकारमकता का दर्शन करते हैं, इसलिए विश्व की एकता का आकर्षण होना आवश्यक बनक नहीं। यैरा तो विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं जब कि विश्व के नेता इन्हीं सिद्धांतों पर एकमत होकर जीवन नियमन की ओर अग्रसर होंगे। धार्मिक उन्नति की चकार्थीय आरिभिक उन्नति के प्रकाशपुञ्ज में किसीन हो आयनी। यह निरुपघातों का और अल-अपंच हिंसा आदि बुराइयों का युग समाप्त होगा। हम धर्मता और संस्कृति के बान्धविक रूप को समझेंगे और उसी आरिभिक विद्या को अपना संकल बनावेंगे जिसको भूलकर आज हम भटक रहे हैं। अनुव्रत उस विद्या का प्रथम पाठ है—उस विद्यालय का मुख्य द्वार है। आइय हम सब इसमें प्रवेश करें।



धनु-शक्ति का संहारक रूप और अगुदत्त

—सत्यदेव विद्यालंकार

धनुवाद या परमाणुवाद का प्राचीन वैज्ञानिक रूप चाहे जो रहा हो आज की धनुशक्ति के प्रयोग की वैज्ञानिक सम्भावनाएँ चाहे जो हों परन्तु साधारण मानव ही नहीं असाधारण व्यक्तियों के सामने भी यह प्रश्न एक बिकट समस्या बन कर खड़ा हो गया है कि धनु-शक्ति यदि संहार का निमित्त बन गई तो आज के मानव का क्या बनेगा ? राजधानी में भारतीय वैज्ञानिकों का राष्ट्रीय सम्मेलन जिस बिम्बायुक्त वातावरण में हुआ है, उसकी ध्वनि उसके तीन मुख्य भाषणों में अत्यन्त स्पष्ट रूप से सुनने में आ रही थी । यह बिम्बायुक्त वातावरण आज के मानव की उस चिन्ता का सूचक था जो धनु-शक्ति के संहारक रूप के कारण सारे ही संसार में व्याप्त हुई है । दो हजार स अधिक भारतीय प्रतिनिधियों के अलावा विदेशों के भी ८० प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित हुए । इंग्लैण्ड के राजघराने की आज भी विरह न बड़ी प्रतिष्ठ है । इसलिए 'ब्लूक आफ इंडियनबरा' प्रिंस फिलिप के सम्मेलन में पधारने को बहुत महत्त्व दिया गया । इन विदेशी प्रतिनिधियों की उपस्थिति के कारण सम्मेलन को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठ एव धीरे-धीरे प्राप्त हो गया । हमारे लोकप्रिय महान् नेता और प्रबान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू सदा ही धनु-शक्ति के संहारक रूप के विरुद्ध चेतावनी देते रहते हैं । व इस सम्मेलन में भी उन चेतावनी को देने में नहीं चूके ।

वीरुत मानवता की पुकार वैज्ञानिकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए नेहरू जी ने कहा— विज्ञान को धार्मिक-उन्नति के साथ-साथ मानव के हृदय मन और आत्मा की ओर भी दृष्टिपात करना चाहिए और अपनी उन्नति के माथ उनका ध्यानमें बैठना चाहिए । विज्ञान ने विरह और ममात्र

म जो परिवर्तन किए हैं उनका देखते हुए हम आज एक नई सभ्यता की प्रयात बला में हैं या यह पुरानी सभ्यता के सम्बन्धकाल में या दोनों में। क्या हमें इस घोर धम घोर उपद्रव के रूप में अपने चारों घोर एक नई सभ्यता की प्रसव-नीका नजर आ रही है या पुरानी सभ्यता की मरण बेचना ?

मानव समाज के सामने विज्ञान के दो पहलू हमेशा विद्यमान रहते हैं। जहाँ एक घोर विज्ञान की यह नम्य घोर प्रेरणादायी प्रवृत्ति नजर आती है, वहाँ कभी कभी मन और आत्मा के आन्तरिक त्रास और पतन के लक्षण भी देखने मयने हैं, सामाजिक दृष्टि में बरतें शूल पड़ती है घोर मानवीय तथा राष्ट्रीय व्यक्तिगत में संघटन का अभाव दृष्टियोग्य होने लगता है।

हम संदर्भ के रूप में विज्ञान की मरकर तस्वीर भी देखते हैं। मानव को प्राण वही साधन घोर से ही अस्तित्वों के विनाश के लिए सज्ज की जा रही है, जिसे दुनिया ने कभी नहीं देखा।

श्री मेहता ने विज्ञान के संहारक रूप का अज्ञानक बिच अस्मित करते हुए जो बतावनी की है, उस पर यदि समय रहते समुचित ध्यान न दिया गया तो पात्र के मानव की निश्चित रूप से प्रलय का सामना करने को बाध्य होना पड़ेगा। पात्र के वैज्ञानिकों ने जब घोर स्वतः का बच्चा अपना नाम सने के बाद सब अपना हाथ नग की घोर पसारना शुरू किया है। अपने एक हाथ से वह अन्तर्लोक और सूर्यलोक जीतने की आकांक्षाएं प्रकट कर रहा है तो दूसरे हाथ से उसने विरह-विजयी बनने का उपक्रम शुरू किया हुआ है। अपनी इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए विज्ञान के संहारक रूप का सहारा लेना अपने दुर्नायकपूर्ण चटना है। यही कारण है कि अणुसक्ति का आविष्कार पात्र के मानव के लिए कुछ घातक बर्तन कर सीपाय अविद्याप बन गया है। अणुसत्तों और उद्भवन यमों के अन्तर्गत जब इतना पातक निड हो रहे हैं तब यह बरपना करना कठिन नहीं होना चाहिए कि पर-संहार के लिए किया गया उसका सुरायोग कौसा संघातक होया ? आषान के नाममात्र की घोर द्विरादिमा में विरह रूप अस्तुयमों के प्रयाग के बाद उसकी संहारक दमिनी की कई पना बड़ाया जा चुका है।

धनु-प्रसिद्ध राष्ट्र-धर्मोपदेश और रूप की प्रतिबन्धिता से पैदा हुई विनीतिका सारे जगत् पर छापी हुई है। इंपीरियल भी उस विनीतिका को और अधिक प्रवर्धित करने एवं अमानक बनाने में संलग्न है। इसमें सन्देह नहीं कि एक और निःशस्त्रीकरण तथा संहारक साधनों पर नियन्त्रण रखने की और दूसरी ओर धनु-प्रसिद्ध के मानव हित के लिए उपयोग करने की भी जरूरत बस रही है। परन्तु यह जरूरत नकारवाने में लुठी के समान है। इस समय तो धनु-प्रसिद्ध का दुरुपयोग संहारक साधनों की सृष्टि करने और दूसरों पर अपनी शक्ति जमाने के लिए ही किया जा रहा है। नेहरू भी न नवयुग के प्रभुत्व के प्रकट होने को बिनाको प्रसन्न-वेदना कहा है वह हमारी विनीत सम्मति में बिनाघ से भयभीत मानव के कराहने की आवाज है? न केवल पुरानी सम्मति का ही किन्तु नई सम्मति का भी सबसे बिनाघ होता निश्चित है।

प्रश्न यह है कि इस धनु-प्रसिद्धी को टासा कैसे जाय? यह कहा जा सकता है कि जो धनु-प्रसिद्धी है वह टल कैसे सकती है। परन्तु दिन प्रति दिन के व्यवहार में हम देखते और अनुभव करते हैं कि मृत्यु को धनु-प्रसिद्धी मानते हुए भी उसको टासने की हर प्रकार की कोशिश की जाती है। डाक्टर बैच या हकीम पर भ्रमिष्ठ अणु तक विश्वास रखा जाता है कि वह रोमी को कोई बचा दे देया जिससे रोमी को मृत्यु-मुक्त से बचा लिया जावेगा। प्राणा का तार भ्रमिष्ठ अणु तक टूटता नहीं है। न तो रोगी ही प्राणा त्यागता है और न उसके सगे सम्बन्धी ही निराश होते हैं। भ्रमिष्ठ अणु तक मृत्यु को परास्त करने की कोशिश की जाती है। जबकि हम व्यक्ति के जीवन में प्राणाभाव का यह नम्य रूप देखते हैं, तब मानव समाज के जीवन के सम्बन्ध में निराश होना कोई अर्थ नहीं रखता है। ओर से ओर निराशा की काली घटाघों में अमरकनवासी प्राणा की विद्युत्-रक्षा पर हमारी दृष्टि सगी ही रहनी चाहिए। सपाह सागर में नाव के उलटने या टूटने पर जो व्यक्ति उससे निपटा रहता है उसके प्राणों की रक्षा किन्हीं न किन्हीं प्रकार हो ही जाती है। इसी प्रकार चाटों ओर बिनाघ या संहार की शक्ति-नीला होने पर भी मनुष्य को जीवन की प्राणा नहीं त्यागनी चाहिए।

द-नीच बूमते फिटते हैं। सन्तप्रवर विनोबा और आचार्य धीतुलसी अपने ही से अपना काम करने में मन्त्र हैं। आचार्य विनोबा का मूदान अपना मगन मानव के अन्दर को कुछ भी नैक है, उसको अपना चाहुता है और उको अपनाकर मानवता को अपने के लिए प्रयत्नशील है। इसी प्रकार आचार्य धीतुलसी का मनुष्य-आन्दोलन मानव में सम्पूर्ण और सम्बन्धी को पैदा र मानव बर्ष की अपने के लिए प्रयत्नशील है। दोनों का माध्यम वह लव है जो प्राकृतिक परिस्थितियों में उभरकर मानवता के पल से विचलित हो चुका है।

यह कहा जा सकता है कि केवल दो व्यक्ति, चाहे के कितने ही महान् क्यों न हों इतने बड़े संसार को अपना इतने बड़े देश को कैसे सुभार सकते हैं ? आचार्य मनुष्य के लिए इस प्रश्न की कुछ कीमत हो सकती है परन्तु सुभार का सन्देश लेकर प्रयत्न होनेवाले सुभारक के लिए इस प्रश्न का कोई अर्थ नहीं है। सुभारक प्रायः भक्तता ही अपने मिशन में सब बाठा है और वह उकी कमी भी परवाह नहीं करता कि कितने लोग उसका साथ देते हैं। जैसे आज सन्त विनोबा और सन्त तुलसी मानवता का सन्देश सुना रहे हैं जैसे ही आज से समयम आई हजार वर्ष पहले महावीर और बुद्ध मानवता के उद्धार की धूनी उठाये हुए थे। ईसा और मुहम्मद ने जब अपना पैगाम सुनाया शुरू किया वा तो बिन्यानों ने उनका साथ दिया था। राम और कृष्ण का साथ देनेवाले कितने थे ? श्रीकृष्ण को घरा ही अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में और प्राप्त भक्तों ही अपना कार्य करना पड़ा। यहाँ तक कि महाभारत के युद्ध में भी ११ अश्विनी के विरुद्ध वे त्रिष पक्ष के साथ थे, उसकी सेना की संख्या केवल सात अश्विनी की और उन्होंने इस शर्त के साथ अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार किया वा कि उसकी सारी मादक सेना विपक्ष में रहेगी और व स्वयं कोई हथियार हाथ में न लेंगे। संख्या का बस सुभारक महापुरुष के लिए कोई अर्थ नहीं रखता। वह महाव्यक्ति रबीन्द्र के शब्दों में भक्तता ही समता है।

आचार्य-धीतुलसी-अनेक-वार यह जोपना कर चुके हैं कि अस्तु-शक्ति के संहार के इस युग में यदि मानवता की रक्षा होनी सम्भव है तो वह केवल

धनुषतों के हाथ ही हो सकती है। मानव की घासुरी साम्राजा और उद्योगी महत्कारकासा सीमा को लांघ गई है। उसकी भूख इतनी बढ़ गई है कि अपने पेट में सब-कुछ मर जेन के बाव भी उसका शाक्त होना सम्भव प्रतीत नहीं होता। अपने पेट में सब-कुछ समाने के लिए वह हिंसा स्तेय व परिग्रह आदि सब कुछ करने पर उतारू हो जाता है। इस रूपट ईर्ष्या रूप मात प्रतिपाठ आदि का प्रारम्भ उसकी इन प्रवृत्तियों से ही हुआ है। इन प्रवृत्तियों पर कोई भी नियन्त्रण सपाकर निःशस्त्रीकरण सम्मेलनों में जहाँ नियन्त्रण समाने की चर्चाएँ की जाती हैं वे सब पत्तों के मोने के समान निरवध सिद्ध होती हैं। "मुह में राम बमल में घूरी" की दुर्नीति का अवलम्बन करनेवाला धान का पन्तराष्ट्रीय राजनीतिज्ञ इसी कारण अपने किसी प्रयत्न में सफल नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि धान के मानव की सत्प्रवृत्तियों का धेन बहुत बढ़ गया है। विज्ञान ने सारे ही बंधार को धीरे धीरे मानव-समाज की एक तर ओर एक परिवार का-सा रूप दे दिया है। मुश्किल यह है कि उसकी सत्प्रवृत्तियों के साथ-साथ उसकी दुष्टप्रवृत्तियों का शायदा भी इसी प्रकार फैलकर बिम्ब स्थायी बन गया है। इसी भी एक क्षेत्र में भी गई हुई एकएक धारे बिम्ब पर छा जाती है धीरे मानव-समाज की उबका दुष्परिणाम भीमना पड़ता है। इसी कारण धान किसी भी सत्प्रवृत्ति को सफल बनाने के लिए पहले भी धोखा नहीं भविक कठोर एवं और प्रयत्न करने की प्रोत्सा है।

धीकृप्य नि जब मोडर्न पर्वत उद्योग का सकल्प किया जा तो घबटाएँ पुरप हीन के नाते वे संवत्स मात्र से उसको ऊपर उठा सकते थे परन्तु उनके लिए सब काम-बोपाल का सहयोग लेना उनके लिए आवश्यक हो गया था। इसी प्रकार अंका-बिम्ब करन के लिए धीरम व लिए बानर देना का यह योग प्राप्त करना अनिवार्य हो गया था। साथक अपना तुम्हारे निजी रूप से धरने लिए हमरों में कोई घपछा न रहते हुए भी जब हमरों के लिए काम करना शुरू करता है तब यह आवश्यक हो जाता है कि हमरे हमरे तन मन धन का पूरा सहयोग प्रदान करें। धान का विज्ञान त्रिन बिम्ब-राशियों के हाथों में पड़कर मानव के संहार का निमित्त बन गया है। सत्क पास राशिय

धीरे साधनों की कोई कमी नहीं है। उनकी अपार शक्ति का मुकाबला केवल विद्वान् और संकल्प की महान् शक्ति से ही किया जा सकता है। अच्युत आम्दातन के प्रवर्तक आचार्य श्रीतुलसी घस विद्वान् और संकल्प के ऐसे प्रतीक हैं जो दूसरों में भी निरन्तर उस विश्वास और संकल्प को पैदा करते रहते हैं। शुम्भक जैसे सोहे में से अपनी शक्ति का संचार कर उसमें दूसरे सोह को अपनी और पीजने की आकर्षण शक्ति पैदा कर देता है जैसे ही अणुवर्तों की शक्ति भी एक दूसरे को आकर्षित करने की क्षमता अपने में रखती है। यह कौम न जाहेया कि अणुवर्तों की इस शक्ति का चारों ओर संचार हो और वह मानव में उस शक्ति को भर दे जिसके अन्तुक्त अणु शक्ति का संहारक रूप लीए पड़ जाए।

हमारी विनीत सम्मति में हमारे प्रधान मंत्री श्री गृह ने विज्ञान सम्मेलन में एकत्रित वैज्ञानिकों से जो आशा की है उसको पूरा करने का शक्ति निश्चित रूप से उन अणुवर्तियों पर है जिन्होंने अणुवर्तों की वीक्षा लेकर अपने का आचार्य श्रीतुलसी का अनुगामी बनाया है। क्या वे अपने प्रधान मंत्री की इन आशा को पूरा कर सकेंगे ?



अणुवत्त यनाम अणुवत्त

—श्री अणुवत्त यनाम

सम्पादक जीवन साहित्य

अणुवत्ती-संप के प्रति मेरी दिलचस्पी उसकी स्थापना के समय से ही रही है। आज पश्चिमी सभ्यता अपनी पूरी शक्ति के साथ हमारे खून-सहन हमारी विचारधारा व हमारी संस्कृति आदि सब पर प्रभुत्व जाम रही है। जीवन के मुख्य उगम बरस दिये हैं। हमारी दृष्टि अन्तर्मुखी होने की अपेक्षा बहिर्मुखी अधिक हो गई है। हम दूसरों के दोषों को तिस का ठाढ़ बनाकर देखते हैं पर अपने दोष हमें दृष्टिगोचर नहीं होते। वैयक्तिक स्वार्थ-साधना ने सोक या समष्टिहित की भावना को दबा दिया है।

भारत आध्यात्मिक देश रहा है। इस भूमि पर समय-समय पर, अनेक ऋषि-महर्षि संत साधु, धर्म प्रसारक हुए हैं, जिन्होंने कहा है कि मानव की विषय भौतिक उपसम्पत्तियों में नहीं है बल्कि आत्मिक उन्नति में है। उन्होंने यह भी कहा है कि यह दुनिया एक माया जाल है। इसमें जो कमलवत् रहेगा वह वास्तविक मुक्त और शान्ति पावेगा जो उसके दलदल में फँसिगा वह आजीवन मटकता रहेगा। पश्चिमी सभ्यता ने हमें और हमारे समाज को भौतिकता प्रेमी बना दिया है। मनुष्य की सफलता जबकि एक समय में उसकी आत्मिक उन्नति के आधार पर घाँसी जाती थी आज इस बात से घाँसी जाने लगी है कि अपने कितना पाया और कमाया है? हमारी समूची दृष्टि ही बदल गई है यह निश्चित रूप से पश्चिमी सभ्यता की देन है।

आज अपनी मूर्खा के लिए लख-लख के भीषण संहारारम्भ अस्त्र-पत्थरों का निर्माण हो रहा है। हम जो महापुरुष और उनमें हुई अकल्पनीय जन-जन की हानि देख चुके हैं। फिर भी तीसरे महापुरुष के बादल आकाश में मँटवते

दिल्ली बसे हैं। प्रत्येक बड़ा देश अपने बचान की तैयारी में अनुभव हाईडोजन बम सहायक वान आदि की भरपूर व्यवस्था कर रहा है। उनकी मान्यता है कि प्रायः सड़ाई जल या बस की नहीं बस्कि हवा की होगी। बरती पर बमने वाली यतायें बुरसवार आदि सब विशेष काम के सिद्ध नहीं होंगे। बही राष्ट्र विजयी होना जिसके पास हाईडोजन बम प्रबवा अनुभव की शक्ति होगी। हिरागिमा पर एक बम मिरा कि म्माड़ा करम। हजारों व्यक्ति मरें और हजारों बर्षों तक बराहने र्हे तो इससे क्या ?

मानव के इस संहार पर आज की सभ्यता पीठी और पोषण करती है। अपनी आन्तरिक दुर्बलता को छिपान के लिए वह बाहरी उपक्रमों का सहारा लेने के लिए व्यक्तियों और राष्ट्रों का बाँधा करती है।

लेकिन हमके विपरीत हमने देखा कि एक महापुरव प्राया जिसका व्यक्तित्व हिमालय के समान ठण्ठ एवं दुड़ और गंगा की जलबारा की भाँति पवित्र था। भारत की आध्यात्मिक परम्परा का वह अन्त्य पुजारी था। उसने अपना स्वर ऊँचा किया बही स्वर जो समय-समय पर हमारे धर्म-अवतका और धर्माचार्यों ने ऊँचा किया था। उसने कहा कि सबस जल्फुट बस यहि कोई है ता वह आत्मिक बस है। मानव उसे अपने भीतर पैदा कर ले तो उसके भागे न बन्दूक ठहर सकती है न तोप न अनुभव न हाईडोजन बम। उसन इस बल का अपने अन्दर विकसित किया और भारत भूमि पर उसका सफन प्रयाग करके निशा दिया। उसका एक ही नाश था—मानवता सुधी रहे और उसके अस्त के—मत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि म्पारह महावत।

उसने भारत को ससाह बी कि अस्त-रास्त से राज्य की रक्षा मसे ही हो जाये मानवता की रक्षा कदापि नहीं हो सकती। बही बात उसन बुनिया स बरी।

अपने आत्मिक बस न इस युग-पुरव न उस महान् साम्राज्य की जड़ उखाड़ की त्रिमके विषय मं कहा जाता था कि उनका विस्तार इतना अविश है कि उस पर कभी मूर्खास्त नहा होगा।

आज संघर्ष बी विचारपाराधों का है। एक परिचम से आई है और वह

कहती है कि जीवन का वास्तविक धानन्द खाने-पीने व मौज उड़ाने में है। दूसरी कहती है कि नहीं जीवन का वास्तविक धानन्द भोग में नहीं त्याग में है। असंयम व नही संयम में है। मूठ में नहीं सत्य में है। और भीतिक उपसम्बिधों में नहीं अपरिग्रह में है। पहली का प्रतीक है अणुवृत्त और दूसरी का प्रतीक अणुवृत्त। मात्र संघर्ष इन्हीं दो विचारधाराओं के बीच हो रहा है।

हमारी निश्चित धारणा है कि धारमभन के समान दूसरा बल नहीं है। जब तक इस बल की प्राप्ति नहीं होगी मानव मुक्त और धान्ति से नहीं रह सकता।

अणुवृत्त और अणुवृत्ती-संघ के प्रति मेरी अभिबन्धि इसलिए रही है कि वे मानव को धान्तिक दृष्टि से सघन बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे मनुष्य की मानवता पर धोर देते हैं और चाहते हैं कि हम सब अपनी जिनाह अपने धन्दर बाँसे अपने दोषों का दर्शन करें और उन्हें दूर करने की बधानम्बक चेष्टा करें। सब के उद्देश्य है —

(क) धान्ति वाली रेश धोर धर्म का मेरभाव न रखते हुए मानवमात्र को सदाचार की धोर धाहृष्य करना।

(ख) मनुष्य को धान्तिमा सत्य धनीय बहृष्य अपरिग्रह धान्ति तत्त्वों का धती बनाना।

(ग) धाम्पारिमकटा के प्रचार द्वारा मुहृष्य जीवन के भीतिक रतर का ठंधा करना।

(घ) धान्तिमा के प्रचार द्वारा धिरव-भीवी व धिरव धान्ति का प्रचार करना।

मेरे विचार से ये उद्देश्य बहुत ध्यापक हैं और इनमें सब कुछ धा जाना है।

अणुवृत्ती-संघ की सबसे बड़ी विधेपना यह है कि वह धिमी से भी धरवार छोड़कर धकीर होने की प्रेरणा नहीं करता। वह कहता है कि तुम ध्यापारि हो पर धने ध्यबठाव की धने काम को धोर उमसे भी बड़कर धने जीवन की पुनीत बनाओ। धितना तुम्हारा जीवन धिगुह्य होमा उतने ही मुक्त उध्वगामी बनोगे। बहृष्यी राजा हुए धोर धिट गये। धीर धीडाधों से बहृ-धे

पराक्रम दिखाये। उनके नाम इतिहास के किसी कोने में मिले ही पाये रहें किन्तु उन्हें कोई नहीं जानता। लेकिन राम कृष्ण महावीर, बुद्ध ईसा मुहम्मद बर्खुस्त कल्पद्रुस आदि का स्मरण कर लोग धन्य होते हैं। मोक्ष-जीवन पर ध्यान भी इन महापुरुषों का प्रभाव है और जब तक मानवता जीवित रहेगी य सब भ्रमर रहेंगे।

ध्यान दुनिया में बिलने धर्म है सबके मूल उद्देश्य एक है। लेकिन कालान्तर से उनके रूप में अन्तर आ जाता है। उससे भी बढ़कर बात यह है कि धर्मों का पासन उसकी मिश्र के अनुसार नहीं बल्कि रुढ़ि के रूप में लिया जाता है। हम उत्सव करते हैं ब्रत उपवास रखते हैं पर किन्तु हैं जो उनकी भावनाओं को समझ कर करते हैं। भ्रगुवती-संघ को एक विवेक संस्था के रूप में रखा गया है और यह भूमि है। कारण कि बिबि विज्ञान नियम-अपनियम में बढ़कर अधिकांश संस्थाएँ निर्जीव हो जाती हैं। उनके आने नियमाधिक का पासन इतना आवश्यक और महत्व का हो जाता है कि मूल भावना उनके हाथ में निकल जाती है। भ्रगुवती-संघ को इससे उन्मुक्त रखकर उसके संयोजकों ने बड़ी दूरदृष्टि का काम किया है पर धर्म धर्मों के बिना दोष का हमने उन्मेक किया है उससे हम संघ को भी बचाना होगा। जो भी नियमादि रखे गये हैं उनका विवेकपूर्वक पासन हो रुढ़ि के रूप में नहीं। ऐसा एक ब्रती भी मिल गया तो वह एक लक्ष के बराबर होया और वह भ्रगुवती-संघ की ध्वजा को ऊँचा रहेगा।



हमारे वो सत्रु भीर अणुवत् प्राबोसन

—श्री महाभारत

सम्पादक अणुवत्

यह एक ताज्जुब की बात तो है ही कि हम जो कभी अपनी नैतिक और प्राथमिक प्रवृत्तियों के कारण ही संसार के अकेले व्यक्तित्व के किसी ऐसे प्राबोसन की बात बताएं जो देश के नैतिक पुनरुत्थान की बात कहें। कितनी सजीव बात है कि एक घोर तो यह समय था जब हम भीर हमारा इतिहास नैतिकता की सबसे अगुनी मिसाल हुआ करता था और एक यह समय है कि ब्रह्म इच्छे कि हम बूझों कि किसी अच्छी बात की प्रेरणा दें स्वयं इन बात की अकरत महसूस करते हैं कि अपने नैतिक पुनर्निर्माण के लिए कोई उपाय करें। यह कटु सच्चाई है। साथ ही इससे बड़ी असोमनीय बात हमारे जीवन की भीर बूझरी नहीं हो सकती है कि जिस भीज की हम कभी बूझों को दिया करण के आज हम अभी भीजने लिए अपने पाप तरस रहे हैं।

कभी हमने अहिंसा की यह मिसाल भी देख ली थी जिसने सार संसार को तब न आज तक बार-बार यह बताया है कि इत्यादि को मारने से ज्यादा अच्छा है किसी मरते इत्यादि को जिन्दगी के देना। कभी हमने सच्चाई, ईमानदारी ईमानदारी ऐसी ही हर अच्छाई की इतनी अच्छी खिती की थी कि न केवल हम ही जत भिती की पदाचार से खुदाइत हुए थे बल्कि समाज अधिगु पूर्वी एशिया और यहां तक कि योरोपीय धर्मों तक के लोगों ने अगले गुसहामी का हिस्सा पाया था। कभी यह जमाना भी था जब हमसे लोग सीराने घाटे के भूतान जैसे विचारमौल देरों तक से अतकर सिर्फ यह रहस्य जो इत्यादि को इत्यादि की सच्ची भीमत धाकना सिनाता है और फिर भीज में एक ऐसा समय था पड़ा जब हमने न जाने कैसे

अपने तमाम अन्धे पुरुषों को छोटी-छोटी चीजों के बदले बचना शुरू कर दिया। किसी ने कहा कि वह हमें अपना देना और हमने उसके हाथ अपना भाई की बिन्दगी बचानी। किसीने कहा कि वह हमें जिससे होगा और हमने उसके हाथ अपनी अस्मत् बेच दी। किसीने कहा कि वह हमें अपने पाप का एक हिस्सा दे देगा और हमने उसके हाथ अपनी तमाम बौद्धिक सम्पत्ति को बेच दिया।

जैसे किसी अन्धे कुत्ते में कोई बिलारी और किङ्कणकर्षक किस्म का लकड़ा पैदा हो जाए तो उस कुत्ते की न तो मरणाति ही बाकी रहती है और न उसकी सम्पत्ति उसी तरह जाने क्या मजबूरियाँ आईं हमारे सामने कि अपनी हजारों साल से लपकी हुई बिरासत की एक एक अन्धी बातको हमने लोगों के हाथों बेचना शुरू कर दिया और आज हम देखते हैं कि हम किसकुल कंगाल हैं हम किसकुल भिखारी की तरह सभी हाथों बूझने की ओर ऐसे देख रहे हैं जैसे कोई सचची खूब सचची भी जानेके बाद किसी नामे में जा गिरता है और फिर हर एक बसने वाले को कातर होकर ताकता है कि शायद कोई उसका हाथ पर रहम लाकर उसे निकाल से लाने से।

साराही मरणाति के मस में जब नालीमें गिरता है तो हमें उसे देखकर सहानुभूति नहीं होती बल्कि अन्धे हम उसकी ओर हिंकारत की नियाह स देखते हुए कतरा जाते हैं। सभी तरह जब कोई खिंचाया अपनी ऐयासी में अपनी तमाम सामग्री फूँक कर भिखारी हो जाता है तो लोग उसे भीख भी अन्धे मन से नहीं देना चाहते। ठीक वही हालत आज करती है हमने। अपने पुरखों की सबसे कीमती सम्पत्ति को हमने बेच लाया। आज हम कंगाल की तरह लोगों के सामने हाथ पसार रहे हैं कि कोई हमें अन्धा चलावा बचावो।

हमारे बिन्दुबिन्दुओं में क्या होता है? यह तमाम रिश्ते और यह तमाम रूढ़ीय यह क्या है? यह किस किस बात का सबूत है कि हमारी बेच तो इतनी खाली हो चुकी है कि उसमें एक कीड़ी नहीं मिलती और जब हम कोसिम करते हैं कि अपने कपड़े उतार कर उन्हें एक बार अन्धी तरह अन्धे सामने कोई नन्हा पैसा चिनका रह गया हो अपनी भी जान का, अन्धी बातों का।

जब हम बिस्वविद्यालयों में बैठकर किसी खास मसले पर धीर करते हैं तो हमारी बुझान पर बार-बार किसी विदेशी विद्वान् का नाम ही क्यों धाता है ? यात्र हम प्रप्रेमी तो घासामी से पढ़ लेते हैं संस्कृत क्यों पढ़ नहीं पाते ? यात्र क्यों रिसर्च करनेवाले विद्यार्थी बार-बार अपनी धीमियों के दूर अपने पर विदेशी विद्वानों के नाम टांक कर गौरव का अनुभव करते हैं ? इसका कारण सिर्फ एक है—हम खुद अंगान हो चुके अपने ऐयास तरीकों से, अपनी पैजा हरकतों से धीर इतीसिए हम बार-बार बीज के लिए तरसते हैं, किसी धीर की ओर देख कर ।

हम जो कमी छबाई का नमूना से छबाई को दुकान गुणों की तरह बाव करते हैं । हम जो कमी ईमानदारी न्याय धीर ब्या जैसी प्रकृतियों के बहने प्रतिष्ठाता से यात्र हम खुद अपने भाप ही भापस से एक दूसरे के साथ बैईमानी करते हैं, रगाबाजी करने हैं एक दूसरे से लड़ते हैं मफरत करते हैं एक दूसरे की बीज जबरदस्ती हकियाने की कोसिएं करते हैं । जमाने का इतिहास तो यह कहता है कि किसी संस्कृति का सबसे पहला गुण होना चाहिए उसकी निरन्तर प्रगतिशीलता । यात्रिह हमने किस मायनी में प्रगति की है ? होना तो यह चाहिए कि अमर कमी हमारे बीज भापस में ही न्याज का निपटारा हो जाया करता या तो यात्र प्रगति करते-करते हम इस स्थिति तक आ जाते कि अन्वय की कोई नुजाइय ही न रहती । हमारे देश में कोई न्यायालय जैसी बीज नहीं है क्योंकि कोई अन्वय नहीं करता—तोसिए तो परा कि अमर यात्र हम यह बात किसी दूसरे देश के सामने कह सकते तो हमारी इन्जत उसके सामने कितनी ऊँची हो जाती ।

लेकिन इसके विपरीत हमें देशके नैतिक पुनरुत्थान की बातें नोबनी पढ़ रही है । देश में ऐसे आन्वोपन जमाने पढ़ रहे हैं जो लोगों की नैतिकता ब्या है यह बला शर्क ।

धीर इसल भी बड़ी इरत की बात यह है कि आन्वोपनों के बावजूद कोई ऐनी बातें नुजने को तैवार नहीं हो रहा है ।

नहीं यहाँ हमें जोड़ना नमोपन करना होना अपने विचार में ।

सोम मुन ठो रहे हूँ नैतिकता की बात और उनको समझ में भी लाना चाहते हैं, लेकिन नैतिक मूल्यों और मर्यादाओं को दूसरी ओर से खोजना बनाने वाले तत्त्व भी हमारे बीच इतने घबिन्न भागए हूँ कि जिन थोड़े से इस्लामों में धन्तर की थोड़ी-सी सफाई बच भी रही है, उनके लिए जीवन का इतना बटिन्न जाल-सा फँसा हुआ है कि अपने विल की सफाई और ईमानदारी का विकास करने का उन्हें मौका ही नहीं मिल पा रहा ।

घाएए हम जरा धीर करें कि समाज में ऐसे कौन से तत्त्व हैं जो हमारे बीच घबिनी बातों और घबिने कामों के होने और विकास करने में बाधाएँ पैदा करते हैं ।

इस ओर दो बातें ध्यान में घाठी हूँ । यों तो किसी जमाने में गाँधीने भी सनकी ओर लौगों का ध्यान लींवा बा और उसने पहले दयानन्द सरस्वती ने काफ़ी धरसे तक उन तत्त्वों से संघर्ष करने की कोसिध की थी लेकिन धाज के एक प्रयत्नकी बात मेरे बेहून में सबसे ताजी है । धनुवत-ग्राम्बोसन— वेध में नैतिक मर्यादाओं की प्रतिष्ठा के लिए अपनी समूची बौधिक प्रक्रिया का प्रयोग करने वाला घाम्बोसन । बूँचि यह घाम्बोसन हिन्दुस्तान में बड़े पैमान पर नैतिक मूल्यों को पुनःस्थापित करने का एक मजबूत करम है और यही एक ऐसा कबम है जो सीधे तीर पर इरी एक काम को प्रमुक्तता देकर धुरू हुआ है इसलिये इरी की ओर ध्यान जाता है । इन घाम्बोसन ने इन दो बातों की तरफ बराबर लौगों को मुतबग्बेह करने का प्रयत्न किया है और अपने हर करम के साथ समाज को इन बातों से घागाह भी किया है क्योंकि यही दो बातें हैं जो हमारे तमाम नैतिक प्रयत्नों को भिदूटी में मिला देती हैं ।

पहली बात है अपने धारिमक विकास के घभाव की । बहुधा ज्वाबा पड़े लिबे लोग धारिमक विकास की बात को बकवास मानत हुए देखे गए हैं और यह ज्वाबा नेद की बात है । धपर कोई जाहिस और बेपड़े लोग एसी बातें करते तो घोबा जा सकता बा लेकिन ताग्बुब की बात तो यह है कि घबिने लखे बिडानों के मुंह से भी यह धकसर मुना जाता है कि धारिमक विकास का कोई खास धर्ष नहीं हो सकता क्योंकि धात्मा नाम की बीज हो तब उसकी बात

की जात। यही क्वात सब से ज्यादा खतरनाक साबित हो रहा है। सोन यथार्थवादी होना चाहते हैं और यथार्थवाद की उस श्रृंखला में यह मूल बातें हैं कि आत्मिक विकास अक्सर मानवीय सम्बन्धों की उन अन्तर्गत विशेषताओं की उपजा कर जाते हैं जो यथार्थ की भूमि में पैदा जरूर होती हैं लेकिन उनकी क्वात मानसिक दुष्प्रभाव करती है। एक उदाहरण से इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है। दो इन्सान भगवा करते हैं। भगवा किसी सम्पत्ति का भी हो सकता है और किसी रिश्ते का भी और यह दोनों ही कारण यथार्थ हैं लेकिन इसके बावजूद उन दोनों में जो गया रिश्ता कायम हुआ भगवा का वह भीतिक सच्चाई न होकर मानसिक सच्चाई है और इसीलिए जरूरी है कि जब कभी हम भगवा के बारे में कुछ सोचें हमें इसबातको ध्यान में रखना होना कि वह एक मानसिक सच्चाई है और फिर उसके प्रतिष्कारके लिए भी हमें किसी भीतिक साधन की अपेक्षा किसी मानसिक साधनकी ओर ही ध्यान देना होगा। मसलन भगवा अन्तिम रूप से इस बात को लेकर ही कभी निबटारा नहीं जा सकता कि किसी को सम्पत्ति का भाव के अनुसार हिस्सा दे दिया जाये क्योंकि अक्सर यह मुमकिन होता तो भगवा होता ही नहीं। भगवा तो अभी समाप्त होना जब हम भगवा करनेवाले की मानसिक स्थिति का अध्ययन करके उसके अनुकूल कार्यवाही करें, चाहे वह उपचार की कोटि का ही भगवा संतोष की।

नीतिक नियमान की सामाजिक बीजगाएँ यही करती है। दो देश अगर किसी प्रदेस के अतिकार के बारे में मुक करते हैं तो उसका निपटारा अभी होगा जब या देशों के बीच अमीन की बात छोड़कर दूसरी मानवीय बातों की ओर और करेक जब वह साबिते कि उस अमीनको मूल से सींचकर पाने से बेहतर है कि मंचा दिया जाये। यही है परिस्थितियों के बारे में आत्मिक परतप्त से उपलब्ध सत्यों की उपबोधिता। अलुचत आम्बोलन चाहे छोटी समस्या हो भगवा बड़ी, उनका हल इसी परिदृश्य में मुक के सामने पेश करना है।

दूसरी बड़ी बात है फैशन की, जिसे अफ-टु-डे हॉलेटी संज्ञा दी जाती

है। यानी जो बोटी पहनता है वह पुराना या पठसूत पहनता है वह नया। जो धीरे धीरे बालों को सड़कों की तरह फटगाफट राक एंड रोस कर लेती है वह प्राकृतिक धीरे धीरे काढ़कर गया-न्याय करण जाती है वह पुरानी धीरे दक्षिमानूस। जो बाइबल के सोफ पर बैठकर मंत्रैसिन मनग धीरे एलिबाइब टेनर जसी फिन्मी नायिकाओं के नम्बरे पर बहम करना है वह प्रप-ट्ट डेट धीरे जो सकावतारसूत्र का अध्ययन करता है वह दक्षिमानूस। हम मान न हमारी जिन्दगी की मास्यताओं को हम कदर बहना है कि हम हर एमी चीज को हम मान लते हैं जो किमी परम्परा से हमें जोड़ती हो। समाज के डर कोने में हम नए बहाव का प्रसर हो रहा है। हम प्रामोद्योगों को संरक्षण देने की बात करते हैं लेकिन ज्यादातर इन प्रामोद्योगों में हम फँसत परम्पी करते हैं। प्रामोद्योगों की दुकान में एक मकन भी ऐसा नहीं बीबता जो प्रामीसु संस्कारों को पहचानने जाता हो। लोग वहाँ इसलिए नहीं जात कि प्रामीसु बस्तुओं को खरीदकर अपना जीवन में वे प्रामीसु बतना को मास्यता हों बल्कि वहाँ भी लीज इसी तरह से जान है कि फँसत की नई चीजें मिल सकेंगी। पहल लोग प्रासीसी डिजाइनों के आउटब बनवाते थे धीरे धीरे उड़िया प्रादिबासियों की आसिया पापुसर हो रही है, इसलिए नहीं कि लोगों ने प्रादिबासियों की कद की बल्कि इसलिए कि लोगों का उमम नया फँसान बीबता बानी कि वह पहनने के बाद एक धीरे धीरे नन्वता को निखाया जा सकता है इससे धीरे धीरे के बजाय चीज हिनूमठानी हो गई।

वह ठीका गमत है। प्रादिबासियों की योगाक हम अब नन्वता को मराहने के लिए पहनते हैं तो न केवल अपना ही अपना करते हैं बल्कि प्रादिब सिधों का भी अपना करते हैं। बम्बई में एमी फिन्स बनने लगी है बिनमें नायिकाए मजदूरियों या देहाती सड़कियों का अध्ययन करती है धीरे मजदूरियों की तरह ज्यादातर बिना आउटब के ही बोनी पहनती है या फिर ऐसी योगाक पहनती है कि ज्यादातर धीरे नंगा बीबे। यह सही बात है कि प्रादिबास मजदूरियों पूरी तरह कपड़े मरीबी के कारण नहीं पहन पातीं लेकिन फिन्सों में वह प्रबलुभा पहनावा इसलिए होता है कि बिन जान धीरे प्रबलन

का धामन पाकर बार-बार विकर बोलते हैं। फिस्मों में नायिकाएँ इसलिये झबूरे कपड़ नहीं पहनती कि निगकी भूमिका के निभाती हैं के झबूरे कपड़ पहनती हैं बल्कि इसलिए कि झबूरे कपड़े पहनकर उनका शरीर भ्रमकता है और लोलुप प्रकृति बर्षक उसमें रख लेते हैं।

अभी बिरोबा का एक नया प्राहवान हुआ था— अस्सीत पोस्टर बलाघो। इनके बिरोब में अंग्रेजी के प्रबन्धकार मिट्टन ने लिखा कि घोष तस्वीरों में हीरोइनों को कम कपड़ पहने हुए बनाए आम पर एतएव करते हैं पर हिन्दुस्तान में करोड़ों औरों इतनी मरीज हैं कि अर्धनग्नता का जीवन बिताती हैं।

बात जोरदार है। लेकिन एक बात और गौर करनेकी है। जो मरीज हैं और कपड़े नहीं पहन सक्ता उस बेलकर अघर कोई अरसीत केप्टाएँ करे तो हम क्या करेंगे ? हर किछी का अबाध होमा कि हम उसे बन्द करेंगे। उस यही अबाध है अस्मिद्ध की बात का भी। यह ठीक है कि करोड़ों लोग अर्धनग्नता का जीवन बिताते हैं, पर उनकी अर्धनग्नता को हम अंग्रेज मान कर अरमान प्रबन्धित नहीं कर सकत। जही तरह वोस्टरों से भी हम नहीं बर्दाश्त कर सकत कि कोई नग्न मूरत हमारे संस्कारों पर मूढ़ अाधुनिकता के नाम पर डाका डाले।

प्रासंगिक बात ही थी यह जो ऊपर बही। यह एक उदाहरण है हमारी कई माग्यताओं का। यह कई मान्यताएँ हमारे संस्कारों को लोअता कर रही हैं, क्योंकि हम दिन-अ-दिन एसी चीजों को अपेक्षित करते जा रहे हैं जो अमान में सुपरी प्रकृतियों की प्रभव देनी हैं। यह अाधुनिकता हमारे अघन में ही नहीं हमारी असा हमारे संगीत और हमारे साहित्य तक को इसी प्रकार अमन राहों की और से जा रही है। अणुअणु-आन्दोलन ने जहाँ लोगों की यह अठाना बाधा है कि कुछ काम न किया जाय वही अठने लोगों में अघ अात्मिक अिवास पर भी अठबर अम अिया है जो लोगों को अघन अरी-अगत अरमों की अठान कराला है। अठने जहाँ कुराई और अर्धनग्नता के अगूनन की अठान अठाई है वहाँ मानव के संस्कारों की अम अठान की तरह भी अठान किया है जो

हमारी अपनी ऐतिहासिक विरासत को हमें सौंठना सके । बकरन सिर्फ इतनी है कि अपने चारों ओर पीछे दूषित बातावरण और दूषित प्रवृत्तियों को हम पहचानें और जीवन के आत्यन्तिक हित को समझने की कोशिश करें । इसके बाव जो हम सभी पाएँ कि आन्दोलन कोई विषय न होकर किसी वक्ता का कड़वा घूंट रहा है ।



अणुवत-आम्बोसन का उद्देश्य

—धीमती उमिता बार्णोव एम० ए०

अपने प्राचीन इतिहास के पृष्ठों को यदि हम पलट कर देखें तो जान हीमा कि आज से महसूस करें वृष भारत के ऋषि-महर्षि और द्रष्टाओं ने मानव के नैतिक उत्थान के लिए आम्बोसन बताया है। अनेक साधु-समूह और धर्म-ग्रन्थों ने जन-कल्याण के लिए आदिमिक सन्नति पर बल दिया था। दूरी और आज की पाश्चात्य सभ्यता साधो पीछी और मीज उड़ाओ की संस्कृति में विरवाग रलती है। वहाँ व्यक्ति की मफमता का मुख्य उमने संसार में क्या और बिना पाया इमसे आका जा मकता है। इस पाने की आपा-भापी ने बिना के नये बरगों को बिना की धार माड दिया है यही इमका सबसे प्रमाण है। एक बिब-मुड के बाद इमरे जनसंहारक ताण्डव और अब तीमरे की लमापी से भी उनकी दृष्टाओं की पूर्ण होती नहीं दिखाई देती। अपनी सुरधा के नाम पर अणुवमी और उद्जन बमों में के अधिक से अधिक पक्ति संघष करना चाहते हैं। मक पूछो तो आज की पाश्चात्य सभ्यता मानव-संहार के आयोजनों पर ही पनप रही है।

स्पया-वीमा बन-बीमन मुम्बर पली आजावाटी ममान यदि पाठ में है तो भी यह सब बाध उत्पात है। अलमी उत्पात तो नैतिक उन्नति में है। हमारे यहाँ यही मन्धी बनीटी मानी गई है। इमका कारण है कि मनुष्य की दृष्टाएं अनीम व अपरिमित होती हैं। वे मुक्त मोम की लारी बीजें अपने में बटोर देना चाहती हैं। उम लुप भीग म कोर् भी व्यवधान इन दृष्टाओं को मार नहीं है। चाहे उनमे इमरी का अमानक से मयानक अदिष्ट ही क्यों न हो ?

आज भी जहाँ पश्चिम में 'आधो-पीछो और मीज उड़ाओ' की सम्बला का प्रचार हो रहा है हमारे देश में आदिमिक उन्नति को महत्त्व दिया जा रहा है।

धरगुप्त-धान्वात्मन भी इसी विधा में प्रयत्नशील है। यह धान्वात्मन क्या है ? इसके उद्देश्य क्या हैं ? यह जानना आवश्यक है।

धरगुप्त-धान्वात्मन का धारम्भ मगध का घाट वर्ष पहल दशमाम्बर जन धम के धरगुप्त सेठपन्धी मन्प्रदाय व धाचाय श्रीगुप्तमी ने किया था। उनका उद्देश्य मरापन्धी मन्प्रदाय का विस्तार करना गद्दी था बरन् जाति बण का मेव किय बिना मानव-मान को मगध के पक्ष की घोष धारुष्ट करना था। यही कारण है कि एक बड़ी मक्या म जंनेतर मज्जनों म भी इसका धपनाया है। इसमें प्रतिपादित धाचारों का मन्बन्ध धम या बिदाय मन्प्रदाय से न होकर मानव-मान क कक्याग से है।

धरगुप्त में जिन धाचारों के पासन की प्रतिज्ञा धनी मार्गों से कराई जाती है वे बौद्ध धर्म में भी 'नियम' नाम म प्रचलित है।

“मर्यादाहिना स्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा”

इस पाचों धाचारों के ही पासन की प्रतिज्ञा धरगुप्ती म कराई जाती है। येव है ता केवस इतना ही कि इन पाचों धाचारों का निर्देम मूत्र रूप में न हाकर प्रतिज्ञाधों क रूप में है धीर इन प्रतिज्ञाधों की धापा सोक-व्यवहार के धनृकूप बना दी गई है।

धरगुप्त का मूम ह्यें बौद्ध धर्म में दिखाई दता है। धाय समाज के प्रबठक महवि दयानन् ने इन्हीं प्रतिज्ञाधों का मूमरूप न केवम धापा के धरुतर मे धार्म-ममात्र क बस नियमों में उन्नेल किया है। वहाँ इन पाच नियमों क धतिरिस्त ‘शील सन्तोष तप स्वाध्यायम्बर प्रणिधानानि नियमा’ म जो नियम हैं वे भी इस साधना क लिए मावक माने गए हैं।

मंदम धीर धहिमा मारण की वा बहुमूस्य निधियां हैं जो बौद्ध धर्म में भी मुख्य रूप में धानी गई है। महारमा गान्धी के दिव्य धाचाय बिनाधामावे ने इन्हीं धिचारों का ध्रधार मर्बोधम के नाम से किया है। इस सब धर्मों क सबाम्य शौतिक धादधों का समन्वय धाचार्य श्रीगुप्तमी के धरगुप्त धान्वात्मन में महज ही मिल जाने के कारण किमी भी धम के धनुयायी धों इन्में धरने धम का ही रूप दिखाई दता है। यही इसकी मर्बप्रियता का कारण हो सकता है

धनुषत आन्दोलन हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। वह हमें बार-बार धर्म पर नहीं, अपने पर ही दृष्टि रखने की चेतावनी देता है। अपनी कामनाओं का घटाओ, जीवन का नियमबद्ध बनाओ दूसरों के कल्याण की कामना करा अपने अधिकारों की चाहते हों तो अपने कर्तव्यों पर भी ध्यान दो। तुम्हारा यह कर्तव्य है कि यदि तुम सुख चाहते हो तो दूसरों के सुख में बाधक मत बनो यदि बातों में धनुषत-आन्दोलन के मूस सिद्धांत आ जाते हैं। इस आन्दोलन में सबका प्रवेश जाति धर्म रंग रूप धीर वर्ग के भेद भाव के बिना हो सकता है। मानव-भाव को इसे अपनाते का अधिकार है।

साधक की तुलसी हम व्रत-विष्टा के द्वारा आत्मा की सनातन समस्या को सुमझना चाहते हैं। उसके दो साधन हैं—त्याग और धरिद्रह। त्याग का प्रयोजन है—स्व-नियन्त्रण की क्षमता मानव-भाव में बड़े धीर धरिद्रह का प्रयोजन है—दुःख या उन्माद को बढ़ाने वाले माधनों में बचा जाये उन्हें छोड़ा जाय।

धनुषत-आन्दोलन यह मानता है कि अधिरिक्त संवह पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। अधिकार चेष्टा से जो भी तुमने लिया है, उसको हमारे के हित या ध्यान रखते हुए त्याग दो। शोषण जब मिट जायेगा तो धर्म का उज्जा रूप हमारे सामने आयगा। शोषण से पवित्रता मिट जाती है। धर्म के भीष्कार के कारण धर्म-सन्ताप और धान्ति सभी नहीं मिल पाती। धान्ति बिना धर्म के विकास का विमना असम्भव है। इसीलिए धनुषत आन्दोलन धर्म को मुख्य मानकर संघर्ष पर ही अधिक बल देता है।

धर्म बल का उद्देश्य धर्म-सुधि की ही भावना है। ऐहिक साध या व्यवस्था के लिए इन बलों को मानकर नहीं चलना चाहिए। धनुषत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी को संघर्ष या कठौरी सेने के लिए नहीं कहता है। उमका उद्देश्य है जा जहां है वह वहीं धर्म की पुनीत बनाये। एक धनु का बस्याण उमका बस्याण धीर जन का बस्याण साधुहिक रूप में समाज का बस्याण धीर सामाजिक बस्याण देश की समृद्धि का बिन्दु है। विना जीवन बिन्दु होगा उमका ही धर्मिक धान ऊर्ध्वगामी बनेंगे। धनुषत

का उद्देश्य है, जीवन पवित्र बने वैनिक व्यवहार म सच्चाई और प्रामाणिकता प्राप्त ।

प्रगुप्त क नियम-हर व्यक्ति को उसकी परिस्थितियों के अनुसार ही नैतिकता का उपदेश देते हैं । यदि डाक्टर क लिए यह यह बताते हैं कि पसे क लोभ स मरीजों को बुधिया में मल डालो ता व्यापारी को भी यह बताने में पीछे नहीं हैं कि न कम तोसो म अधिक ठोस कर दूसरों स ता । एक भार को थोरी करने से रोक्ते हैं तो दूसरी ओर घासक का धूम लेने से भी ।

यदि यह प्राम्दोसन सफल हुआ तो इसमें किश्कि भी सन्देह नहीं कि उसस राष्ट्र की उन्नति में भारी सहयोग मिलेगा ।



भारतीय संस्कृति और अणुवत्

—श्री रामकृष्ण भारती एम. ए. बी. डी

घाज बिस्व में प्रघाति तथा प्रमत्ताय सर्वत्र व्याप्त है। मानव-समाज नग यो महायुद्धों की विभीषिकाओं में इतना बल है कि वह तृतीय महायुद्ध की घातका से ही प्रमतीत प्रतीत होता है, क्योंकि वह जानता है कि यदि तीसरा महायुद्ध कहीं हुआ तो मानव-संस्कृति का इतना ध्वंस और नाश होगा कि मानवता को कहीं और शरण लेनी पड़ेगी। कोरिया के युद्ध में फिटनी मीपल ताएँ हुईं, घाज भी यह वर्गुन का विषय है।

संसार के बड़े-बड़े राष्ट्र प्रमत्तहीन हैं कि तीसरा महायुद्ध टस जाये। बिभिन्न राष्ट्रों में बिभिन्न घाति सम्मेलन हो चुके हैं और घाति के बारे में यत्र-तत्र लपटें जा रही हैं, किन्तु घाति तो बाहर न भिभने वाली नहीं। इनके लिए तो भीतरी प्रयत्न और निरन्तर साधना की आवश्यकता है। घाज का जन जीवन इतना कृत्रिम दम्नपूर्ण और घनैतिक हा चुका है कि हमारे प्रत्येक कार्य में स्वार्थ-भावना व्याप्त है।

भारतीय संस्कृति भीतिघनाकारी न होकर घाभ्यारिकक इतिहासु घ व्याप्त है। हमारे घर्म-शास्त्रों में मानव कर्मधर्मों में से एक कर्मधर्म यह भी है 'घात्मनः प्रणिभूतानि पश्यां न समाचरेत्'। अर्थात् अनुप्य को ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए, जो उस धर्म प्रकृष्ट नहीं समता।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मित्रता ही अनुप्य का धर्म है। शास्त्रों में कहा है—'हते हृद्दमा मित्रस्य मा सर्वाति भूतानि समीरान्ताम्। मित्रस्याहं चतुषा सर्वाणि भूतानि समीरो। मित्रस्य चतुषा सर्वाणि भूतानि समीरान्ताहं अर्थात् संसार के सब प्राणी एक दूसरे का मित्र की इष्टि में रोवें। मैं तथा हम सब मित्र की इष्टि में सबको रोवें।

मित्रता की भावना के लिए बिश्वाज की भावना आवश्यक है। जब तक अनुप्य का व्यवहार घम्प, मायों के नाश बिश्वाजपूर्ण नहीं, तब तक मित्रता

नहीं हो सकती। मित्रता के लिए संकोच कायरता तथा भय की भावना बाधक है। इसीलिए उपायक तथा साधक सदा निर्भय होने की कामना करते हुए बर मायता है—'धर्मय मित्राद्यमयमित्राद्यमय प्राणात्मय परो म । धर्मय न ममर्ष रिवाग' सर्वा प्राणा मम मित्रं भवन्तु । धर्मात् मुझे मित्र धर्मित्र परिचित प्रकवा इन सबसे निर्भयता हो। यहा तक कि दिन और रात भी मरे लिए निर्भयता का बरवान देन चासे हा। यही नहीं मनुष्य विद्याओं तक ये निर्भयता का बरवान मांगते हुए कहता है—'धर्मय न कुर्वन्त्वन्तरिक्षामयं चावा-पृथ्वी उम इम । धर्मयं पश्चादमयं पुरन्नाद्यमयं मुत्तयश्चमयश्चमयं नाज्नु । धर्मात् हुमें धर्तरिश्च (धाकाम) धूमौ पृथ्वी सोक स धर्मय लोक का बरवान मिसे। यहाँ तक कि सब सिगाए भी मरे लिए निर्भयता का मन्देश हैं। पीछे, धामे ऊपर तथा नीचे सब घोर से हुमें निर्भय होने का ही बर मिल।

इस प्रकार हम देखन हैं कि जहाँ पश्चिम धर्ममायुष्य धीरिकाता की घोर बड़ रहा है और मानव हाते हुए भी अपने कामों से बानक बनन का प्रयत्न कर रहा है वहाँ पूर्व के दान्य इन मानवमात्र को 'मनुर्भव' के अनुसार मानव बनने का सन्देश देते हैं। धात्र का सबन बड़ा इन्म और धर्मिगाप यही है कि हमारे सम्मुख धादग तो है देवता बनन का किन्तु वास्तव में हम मानव कहलाने के भी धर्मिकापी नहीं हैं। हमार जीवन का धावर्ण तो यह वा कि हम सादा जीवन तथा उन्नत विचारवान् बनें किन्तु धात्र हमने अपनी धावस्मकताओं को इतना बड़ा लिपा है कि हमारा जीवन इतिम तथा बन्नी बन चुका है और हम उन्नयता की दीक में किरी धम्य देस के पीछे रहने में धपना धपमान समझते हैं। धात्र हमारा जीवन मदीन के समान निर्जीव बन चुका है और हम सादा दिन परिधम करके धबिक से धबिध धर्म-सुचय करते वा प्रयत्न करते हैं।

माथीजी ने हमारा ध्यान नैतिकता की और धाकपित किया। उनके जीवन के एक-एक कार्य में धादिकता धारम-बिभक्तन तथा धाध्यात्मिकता की पकित्र भावनाएँ हटिबोचर होती हैं। स्वयं देकममूजर जैसे पश्चिमी विद्वान् भारतीय सम्पत्ता को मस्तक मुजाठ हुए भारत वा मगोगान करते हुए गयी बचते।

धनुषतीर्थक के प्रतिष्ठापक आचार्य श्री तुलसी ने संसार की दुखिया को अपनी इन धाँकों से देखा धीरे उम्हूँनि फिर से प्राचीन परम्परा की याद हमें दिनाई । भारतीय संस्कृति में यम धीरे नियमों का महत्त्व उत्सुकनीय है । मनुस्मृति के अनुसार—'यमान् मवेत् सततं न नियमान् केवलान् बुध यमस्य न्ययकुर्वाणो नियमान् केवलान् भवन् १ धर्मात् बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह यदा यमो का भजन करे, केवल नियमों का नहीं । जो व्यक्ति केवल नियमों का ही भजन करता है तथा यमों पर ध्यान नहीं देता वह संसार में उन्नति को प्राप्त नहीं होगा अपितु अधोगति धर्मान् संसार में गिरा रहता है ।

उक्त यम पाँच बताए गए हैं धीरे नियम भी पाँच ही हैं—

पाँच यम इन प्रकार हैं—नवाहिमा तस्यास्तेषु ब्रह्मचर्यापरिग्रहाममा २ ।

धर्मात् अहिमा (बैर त्याग) मत्स्य (सत्य मानना सत्य बोलना धीरे मत्स्य ही करना) अस्तेय धर्मान् मत भजन कर्म है जोरी का स्थान ब्रह्मचर्य धर्मात् उपश्रमिष्य का संयम अपरिग्रह धर्मान् धरपत्त अतोमुपता स्वस्वाभिमान रहित होना—इन पाँच यमों का भजन मनुष्य को अक्षय करना चाहिए ।

दूसी प्रकार नियम भी पाँच बताए गए—शौच मत्तोप तप स्वाध्यायश्चर प्राग्निधानानि नियमा ३ ।

धर्मात् शौच—स्नानादि में पवित्रता मत्तोप—अभ्यस्य प्रसन्न होकर निश्चय करना मत्तोप नहीं किन्तु पुरुषार्थ श्रितना हो सके सतना करना हानि-नाम में हर्ष का शोक न करना तप—कष्ट भजन में भी बर्भदुक्त कर्मों का अनुष्ठान स्वाध्याय—पढ़ना पढ़ाना ईश्वर प्राग्निधान—ईश्वर का भक्ति विशेष से आराधना को अर्पित करना—ये पाँच नियम कहलाते हैं ।

इन प्रकार दास्य की मर्यादा के अनुसार आचार्य श्री तुलसी ने द्वितीय महापुत्र के परिणाम स्वतः तथा दया की स्वतन्त्रता प्राप्ति के परवान् बहनी

१ मनु अध ४ २०४ ।

२ योग साधन पाठे सू० ३ ।

३ योग साधन पाठे सू० ३२ ।

हुई धर्मतिष्ठा चोरबाजारी तथा रिस्वत को धरकर अपना कर्तव्य मर्यादा कि वे एकबार फिर से मानवता का प्राप्ति करें और उन्हें अपने कर्तव्य का प्रति जायक करें। जो तीन वर्ष पूर्व वे रिस्ती पधारे और उन्होंने राजधानी की जनता को तथा उनके माध्यम से देश तथा विदेश की जनता को उनके कर्तव्य से परिचित कराया। पांच वर्षों अर्थात् महाद्वारों का आचार पर उन्होंने जैन शास्त्रानुसृत धरुवर्तों के लिए मानवता को पुकारा। महाद्वारों तथा धरुवर्तों को संशयित हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि जैन-आचारण के लिए महाद्वारों का पूर्णतया पासन करना सम्भव नहीं। इसलिए वे उनके जिनत भी संघ का पासन कर सकें जतना प्रयत्न वे करने में कभी न चूकें। आभवा-मार्ग कठिन होता है और उसके लिए निरन्तर कष्ट और तपस्या की आवश्यकता रहती है। सांसारिक साधकों के लिए आचार्य श्री तुमसी ने धरुवर्ती-संघ का विधान बनाया हुआ चौदसी नियमोपनियमों का उल्लेख किया जिनको पासन करने में सभी साधक प्रयत्नशील रह सकते हैं।

धरुवर्ती-संघ तथा उसकी विचारधारा का सम्बन्ध में देश तथा विदेश में उत्साहजनक प्रतिक्रिया हुई, जिसका जर्जन धरुवर्त साहित्य से प्राप्त किया जा सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम धारम निरीक्षण तथा आभवा के जीवन के लिए अपने आपको प्रस्तुत करें। जब तक जन-जीवन में आचरण तथा कर्तव्य की भावना उल्लत नहीं होगी तब तक जहल्य में गफमता मिटने की पूर्ण आशा नहीं है। जब तक इमाज नैतिक स्तर ऊंचा नहीं होगा तब तक समाज का स्तर उल्लत नहीं हो सकता। यह ठीक है कि आज रोटी के प्रश्न ने धर्म्य सब प्रश्नों को परामुक्त कर दिया है और 'सर्वे गुणा काचनमा ध्ययन्ति' के अनुसार सभी समस्याएँ धार्मिक समस्याओं का घंघ बनकर रह गई हैं किन्तु जैसे की होड़ में सबका इष्टिकोग ही ऐसा कृषिमा हो गया है कि हजार पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन भी उनके प्रभाव से धसूना नहीं रह गया है। प्राचीन परम्पराएँ तथा धर्म-विश्वास सामाजिक कृतीधियाँ तथा धर्म बहुत कुछ धिन्-मिन् होने जा रहे हैं। मानव प्रवृत्तिस इष्टिकोग में बस्तुबारी तथा यवार्थबारी बन रहा है। धारार्थवार की नींव को संशयित मिड

करल के प्रयत्नों में भौतिकवादी प्रयत्न निरन्तर जुटे हुए हैं ऐसी स्थिति में ससार फिर से मातृवर्ष की धार दृष्टि समाए बैठे हैं। एमिया आम रहा है। योक्ष के बन्धन से एमिया के छोटे-छोटे बेग मुक्त होने जा रहे हैं और हम बात की घामा है कि योक्ष का तारम्यरिक मुटबन्धी का बालावरण उसे एक ऐसे गत में बन्देवगा कि मानव का पुनर्निर्माण होमा। अमरीका के अर लानों में बिम प्रतिदिन बनती हुई मुड-गामरी तथा उमका म्यापारिक दृष्टि कीण उसे मुड के सपने बेवन की बिबा करते रहते हैं। जब तक हमारे मनों में धार्मिक सन्तुह तथा अधिष्ठात का बालावरण बना रहेगा तब तक हम एक राष्ट्रम ब नहीं अनेकों ऐंग संघ बनासों तो भी मानवता का कुछ कस्याण होने बासा नहीं। प्रत्येक बिबाक प्रस्त प्रस्त का निबटारा अब तक अमबन्धी के आधार पर हाबा तब तक हम अन्धर में ही ठोकरें खाते रहेंगे। इसलिए हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर अमने के मिण प्रयत्नशील होना बाहिए।

‘तमनो मा ज्योतिर्ममय मृत्योर्माप्सृतं ममय’ अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर से अमो। हमें निरासबादिता को छोड़कर घासा का संबल लेकर अतना है। मार्ग की अलमनें तथा संकट हम हमारे नव निर्माण के लिए प्रयत्नशील करें वही हमारी हादिक भावना और इच्छा होनी बाहिए।

—प्रो० श्रीमती त्रिवेणी त्रिह एम० ए०

प्रायः का युग भौतिकता का युग है। चारों घोर इसी का प्रमाण दीखता है। जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया है। प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुख-दुखों की उपभोग्य को ही धनम जीवन का परमोद्देश्य समझता है। हमें तो र्क बाह्य बाधाबन्धन में ही उलझ कर मरना पड़ा है न हम अपने धनम-सम्पत्तियों को धनम फिर भीतर की ता-बान्धन ही बुर है। मनुष्य अपने प्राणिक-व्यवस्था नहीं पहचान पा रहा है बल्कि उसके पास आत्मवर्धन के हेतु समय नहीं। भी धनम मूर्ख ही घोर बड़-बड़-बड़ जा रहे हैं परिणति की घोर भी किसी-किसी का ध्यान नहीं जा पाता। हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है और उसकी प्राप्ति के मार्ग कौन हैं? हम इससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। राष्ट्रीय सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन से आध्यात्मिकता का सर्वथा मोप हो गया है। एक युग का युग है कि सर्वसाधारण तो इसे अनासक्तिक और धनगत समझन लगा है। फिर भी भारत माता की भूमि में कुछ ऐसी शक्ति है कि सर्वथा मूर्ख आध्यात्म-वर्धन एवं चिन्तन के नेतारों का प्रादुर्भाव होता रहता है। बौद्ध धर्म का भी भारत के राष्ट्रीय तथा सामाजिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है और यदि प्रायः ही मानवता को यह कल्याण के पथ पर ले जाना चाहता है तो कुछ अस्वामाजिक नहीं बनना चाहिये।

जैन स्वतन्त्र नेतारों की सम्प्रदाय के नायक आचार्य श्रीतुलसीदास श्रद्धालु-जीव की स्थापना कर जिस व्यापक दृष्टिकोण को अपनाया है उसकी प्रशंसा करने का काम संवरण में नहीं कर सकते। साम्प्रदायिकता की मंकीर्ण परिधि में मुक्त यह नैतिक आन्दोलन एक धर्म है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रायः का सतत मानव-समाज इसका अभिनन्दन करेगा यदि हमका मुचाक रूप से प्रचार किया गया। श्रद्धालु-जीव के नियमों को देखने से यह स्पष्ट परिभाषित होना है कि यह इतिहासिक नैतिक एवं सामाजिक आन्दोलन है। सब के नियमों से

यह धारणा मिलता है कि आचार्य महादेव को जीवन के प्रत्येक क्षण का व्यावहारिक ज्ञान है तथा उसी पर आधारित ये नियम हैं जो सुगमता से जीवन में प्रवेश पा सकते हैं।

महिमाओं के लिए जो विशेष नियम हैं वे भी सर्वथा प्रांसनीय हैं तथा उनके जीवन को उच्छादनों की ओर से जाने वाले हैं। पुरुष धीरे धीरे जीवन लयी रथ के दो पहिए हैं धीरे दानों का सुहृद् होना आवश्यक है। क्रूरता एवं नात्मन्य की मूर्ति नारी में अस्ति पटन की सर्वथा घरेला रहती है और इन नियमों का यदि अक्षर्या पालन किया जाय तो गार्हस्थ्य जीवन पूर्णतया सुधी हो सकता है अथवा पृथ्वी पर स्वर्गके निर्माण की शक्यता साकार रूप धारण कर सकती है। इन नियमों के पालन से नारी स्वातन्त्र्य को भी कोई आघात नहीं पहुँचता बल्कि उसे तो एक अस्ति मिलती है।

बापू के सत्य धीरे अहिंसा के सिद्धान्त का बड़ा ही सुन्दर समावेश पञ्चत के नियमों में हो पाया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आत्मवर्धन का यज्ञ ही महत्त्व है तथा निर्वाण का यही प्रथम सोपान है। इन पहलु पर भी पूरा जोर दिया गया है तथा मेरा विश्वास है कि इसके प्रसार से सामाजिक उत्थान एवं राष्ट्रीय निर्माण को बहुत बड़ी शक्ति मिलेगी और हम अभीष्ट की प्राप्ति कर देंगे।



